

सोमवार की सुबह दिल्ली और उससे सटे नोएडा, गाजियाबाद और गुड़गांव जैसे शहरों के आसमान में जैसी धुंध की चादर पसर गई, उससे साफ है कि लोगों पर पटाखे फोड़ने को लेकर सुप्रीम कोर्ट की पाबंदी का भी कोई असर नहीं हुआ है।

# सांसों में घुलता जहर

विश्व

स्वास्थ्य संगठन सहित विभिन्न संस्थाओं की चेतावनियों के बावजद राजधानी दिल्ली और एनसीआर में दीपावली के एक दिन बाद वायू प्रदूषण का स्तर इस मौसम में पहली बार अत्यंत खतरनाक स्तर तक पहुंच गया। सोमवार की सुबह दिल्ली और

उससे सटे नोएडा, गाजियाबाद और गुड़गांव जैसे शहरों के आसमान में जैसी धुंध की चादर पसर गई, उससे साफ है कि लोगों पर पटाखे फोड़ने को लेकर सुप्रीम कोर्ट की पाबंदी का भी कोई असर नहीं हुआ है। पिछले कुछ वर्षों में हर साल दिवाली के समय दिल्ली में हवा की गुणवत्ता खतरनाक स्तर पर पहुंच जाती है, जिसे देखते हुए सुप्रीम कोर्ट ने 2018 में प्रदूषण फैलाने वाले पटाखों पर पूरी तरह से रोक लगा दी थी और सिर्फ ग्रीन

पटाखे फोड़ने की इजाजत दी थी, जो कि 30 फीसदी कम प्रदूषण फैलाते हैं। लेकिन दिल्ली में एयर क्वालिटी इंडेक्स (एक्युआई) 735 अंक तक पहुंच गया, वहीं हापूड में यह सात सौ के करीब था। इस सूचकांक का संबंध पीएम (पार्टिकलेट मैटर) 2.5 और पीएम 10 जैसे हवा में घुले सुक्ष्म कणों से है, जो सीधे फेफड़े को नुकसान पहुंचाते हैं। विश्व स्वास्थ्य संगठन की रिपोर्ट के मताबिक पीएम 2.5 के जहरीले असर की वजह से वर्ष 2016 में भारत में पांच साल से कम उम्र के एक लाख दस हजार बच्चों की मौत हो गई थी। खतरनाक स्थिति तक पहुंचते वायु प्रदूषण का असर सिर्फ फेफड़ों और सांस पर ही नहीं होता, अध्ययन और शोध से पुष्टि हो चुकी है कि मधुमेह के मरीजों व गर्भवती महिलाओं और उनके गर्भ में पलने वाले शिश्ओं पर भी इनका

काफी प्रतिकृल असर होता है। हैरत की बात यह है कि विभिन्न तरह की चेतावनियों के बावजूद दिल्ली में सोमवार को वायु गणुवत्ता सूचकांक को आंकने से संबंधित 37 केंद्रों में से छत्तीस में वायु प्रदूषण का स्तर बेहद खराब दर्ज किया गया। हवा में घुलते इस जहर के लिए पटाखों के साथ ही इस मौसम में पड़ोसी राज्यों हरियाणा, पंजाब, उत्तर प्रदेश में पराली जलाने से भी वाय प्रदूषण बढ़ रहा है। इसके अलावा इसमें वाहनों और उद्योगों से होने वाले प्रदूषणों का भी हिस्सा है। देखा जाए, तो यह हमारे समय के विकास के मॉडल से जुड़ी विसंगतियों का ही नतीजा है। समय आ गया है, जब हवा में घुलते इस जहर को रोकने के लिए सरकारों के साथ ही नागरिक समाज भी आगे आए और अपनी जिम्मेदारी समझे।

# मतदाताओं की पाठशाला



चनावों की कहानी सबसे बेहतर तरीके से बयान कर रही हैं। 2019 के लोकसभा चुनाव में हरियाणा में भाजपा ने 73.5 लाख वोट हासिल किए थे और

उसे 79 विधानसभा क्षेत्रों में बढ़त मिली थी। अक्तूबर, 2019 में भाजपा को 45.6 लाख वोट मिले और वह चालीस सीटों के साथ बहुमत से पीछे रह गई। मुख्यमंत्री के रूप में शपथ ग्रहण करते समय इस बार मनोहर लाल खटटर को जननायक जनता पार्टी (जेजेपी) के युवा नेता दुष्यंत चौटाला के साथ मंच साझा करना पड़ा, जिन्होंने उपमुख्यमंत्री के रूप में शपथ ली। महाराष्ट्र में भाजपा-शिवसेना गठबंधन ने लोकसभा चनाव में राज्य के 230 विधानसभा क्षेत्रों में बढ़त हासिल की थी। 288 विधानसभा चुनाव में 161 सीटों के मजबूत बहमत के बावजूद सरकार गठन को लेकर शिवसेना के साथ अभी बातचीत चल ही रही है। शिवसेना चाहती है कि 29 वर्षीय आदित्य ठाकरे को आधे कार्यकाल के लिए मुख्यमंत्री बनाया जाए और मौजदा परिदश्य में भाजपा को कम से कम उपमुख्यमंत्री का पद शिवसेना को देना पड सकता है। लोकतंत्र की महिमा का प्रदर्शन चरम पर है। मराठा और जाटों के गढ़ में मतदाताओं ने जो जनादेश दिया है, उसमें राजनीतिक दलों और राजनेताओं के लिए कई सबक हैं।

पहला सबक : चनावी पर्यटकों के खिलाफ वोट। कैंसर को पराजित करने वाले 79 वर्षीय शरद पवार की वह तस्वीर, जिसमें उन्होंने प्रचार के दौरान सतारा में भारी बारिश के बीच छाता लेने से इनकार कर दिया था, हाल के चुनावों की सबसे स्थायी तस्वीर बनी रहेगी। उन्होंने दमखम लगाकर अपनी पार्टी को 54 सीटों पर विजय दिलाई। मतदाताओं ने उन नेताओं और पार्टियों को खारिज कर दिया, जो सामने



मराठा और जाटों के गढ में विधान सभा चुनाव में मतदाताओं ने जो जनादेश दिया है, उसमें राजनीतिक दलों और राजनेताओं के लिए कई सबक हैं।

शंकर अय्यर

नहीं आए। यह सबक खासतौर से उन लोगों के लिए महत्वपूर्ण है, जो हाई कमांड संस्कृति पर यकीन करते हैं और नाराजगी को राजनीतिक दर्शन तथा उम्मीद को सबसे व्यावहारिक रणनीति मानते हैं।

दसरा सबक : मतदाता मोदी पर तो निवेश करना चाहते हैं, भाजपा पर नहीं। मसलन, इंडिया टडे एक्सिस माई इंडिया सर्वे में भाजपा को वोट देने वाले 60 फीसदी मतदाताओं ने कहा कि उन्होंने प्रधानमंत्री मोदी और केंद्र सरकार के काम को देखते हुए बोट दिया। यानी भावनाएं और भरोसा ही

पर्याप्त नहीं तीसरा सबक : आखिर यह अर्थव्यवस्था का मामला है। चाहे विदर्भ, पश्चिमी महाराष्ट्र या फिर ग्रामीण हरियाणा हो, नतीजे कृषि क्षेत्र की हताशा और रोजगार की चिंता को दिखाते हैं। हरियाणा में किसानों, खेतिहर मजदरों, बेरोजगारों और 18 से 35 वर्ष के मतदाताओं ने भाजपा के मुकाबले कांग्रेस को पसंद किया (एक्सिस माई इंडिया

सर्वे)। यह महत्वपूर्ण है कि इन मुददों का समाधान

न होने से हताशा और जाति में गठजोड़ बन गया

और इस वर्ग ने जाति के आधार पर वोट दिया। चौथा सबक: हर टीम को एक कप्तान की जरूरत होती है। स्थानीय नेतृत्व को ताकत देने से कांग्रेस को पंजाब, हरियाणा, छत्तीसगढ और मध्य प्रदेश में लाभांश मिला है। लेकिन अभी हरियाणा और महाराष्ट्र में कांग्रेस नेतृत्व के सवाल पर उलझी रही। कुमारी सैलजा और भूपिंदर सिंह हुड़डा की नियुक्तियां जब हुईं, तब चुनाव को चालीस दिन भी नहीं बचे थे, लेकिन उन्होंने भाजपा को अपने दम पर बहुमत हासिल करने से रोक दिया। महाराष्ट्र में दो चव्हाणों के बीच भ्रम बना रहा। पवार की मेहरबानी से पार्टी सतह पर नजर आईं. जिन्होंने अपने नेटवर्क का इस्तेमाल कर अपने अनमने सहयोगी को ताकत दी और कांग्रेस के अपने साथियों के लिए प्रचार किया।

पांचवां सबक : आरक्षण अच्छा है, पर पर्याप्त नहीं। देवेंद्र फडणवीस ने मराठों को आरक्षण देने की पहल की, पर यह पर्याप्त नहीं था। भाजपा ने विभिन्न सामाजिक समहों के बीच अच्छा प्रदर्शन किया, पर पश्चिमी और उत्तरी महाराष्ट्र में एनसीपी और कांग्रेस का बेहतर प्रदर्शन और ग्रामीण हरियाणा में कांग्रेस के वोट प्रतिशत में बढोतरी सत्तारूढ दल के लिए संकेत हैं।

छठा सबक : संगठन मायने रखता है। भारत के आर्थिक केंद्र मुंबई में महाराष्ट्र की 288 में से 36 सीटें हैं। डेढ़ साल के भीतर कांग्रेस ने मुंबई के तीन प्रमुख बदल दिए। इस शहर में पार्टी की वोट हिस्सेदारी है, कार्यकर्ता हैं, पर कोई नेता नहीं है। कांग्रेस मुंबई में आपस में लड़ती रही।हरियाणा और महाराष्ट्र, दोनों ही ऑटो हब हैं, पर कांग्रेस अर्थव्यवस्था और बेरोजगारी को लेकर जनता की नाराजगी का लाभ नहीं उठा सकी।

सातवां सबक : अहंकारियों को सजा मिलेगी महाराष्ट्र में पंकजा मंडे और हरियाणा में कैप्टन अभिमन्य को मिली हार यही रुझान दिखाती है।

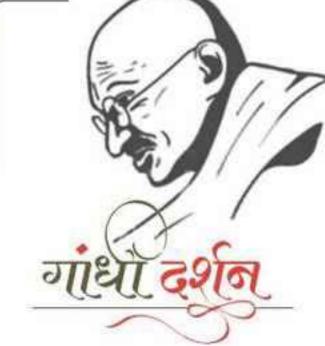
हरियाणा में खटटर के साथ अनिल विज ही जीत पाए, बाकी के उनके आठ मंत्री हार गए। महाराष्ट में भी फडणवीस के आठ मंत्री हार गए। लोग बाढ़, सुखा या हताशा जैसे मुद्दों को लेकर मंत्रियों की संवेदनहीनता के कारण नाराज थे।

आठवां पाठ : दलबदल्ओं को गले लगाना महंगा पड़ सकता है। गुजरात में अल्पेश ठाकोर और महाराष्ट्र में उदयराजे भोसले की पराजय का यही सबक है। भाजपा की आयात-निर्यात नीति का, यानी अवांछितों को किनारे करना और दलबदलओं को शामिल करना, प्रभाव उसके प्रदर्शन में दिख रहा है। कांग्रेस और एनसीपी छोडने वाले अनेक दलबदल पराजित हो गए। दलबदलुओं के कारण वफादार कार्यकर्ताओं के हाथ से अवसर चला गया और दो दर्जन विदोहियों के हाथ में अब मोलभाव करने का अधिकार आ गया है।

नौवां सबक : नोटा फैक्टर। किसी भी उम्मीदवार को बोट न देना उभरता हुआ विकल्प है। हरियाणा, महाराष्ट्र और विधानसभा के उपचुनावों में कुल 8.9 लाख मतदाताओं ने नोटा का बदन दबाया। नोटा फैक्टर वहां नजर आया, जहां राजनेता संकट या आपदा के समय सामने नहीं आए। आम धारणा के विपरीत ग्रामीण मतदाताओं ने शहरी मतदाताओं की तलना में नोटा को हथियार बनाया है, जैसा कि लातूर ग्रामीण और पलुस खड़गांव में नजर आया, जहां नोटा दूसरे नंबर पर रहा।

दसवां सबक : हाई कमांड के लिए खतरे की घंटी चनाव परिणाम का सबसे आश्चर्यजनक तथ्य क्या है? कांग्रेस के प्रदर्शन से पार्टी और उसके नेतृत्व के बारे में धारणा बनती है। कांग्रेसियों ने अभी तक हाई कमांड को श्रेय नहीं दिया है और पार्टी नेतृत्व का अता-पता नहीं है। पार्टी ने खद का अस्तित्व बचाने के लिए एक और चुनाव लड़ा और दिखाया कि हाई कमांड के बिना भी काम चल सकता है!

-लेखक आईडीएफसी इंस्टी. के विजिटिंग फेली हैं।



# सर्वधर्म समभाव से बहुत-सी गुत्थियां सुलझ जाती हैं

अपना कुछ तजुर्बा मैं बताऊं, तो सर्वधर्म समभाव का अर्थ शायद ज्यादा स्पष्ट होगा। जैसे यहां प्रार्थना रोज होती है, वैसे ही फिनिक्स में भी रोज प्रार्थना हुआ करती थी। मरहम दाऊद सेठ का बेटा मरहूम हुसेन तो आश्रम में बहुत बार रहता था। वह प्रार्थना में उत्साह से शामिल होता था। वह खुद बहुत मीठे सुर में ये बहारे बाग दुनिया चंद रोज गाता था।

यह भजन हम

सबको उसने सिखा दिया था तथा प्रार्थना

में बहुत दफा गाया

जाता था। जोसेफ

रॉयपेन आश्रम में

अनेक बार आते-

जाते थे। वह ईसाई

थे। उन्हें वैष्णव जन

भजन बहुत पसंद

था। उन्होंने वैष्णव

जिसे हम समझ न सकें, वह गलत ही है, ऐसा मानने की जल्दबाजी करना भूल है।

जन की जगह एक दिन क्रिश्चियन जन तो तेने कहिए अलापा। सबने तुरंत उसे उठा लिया।

जोसेफ के हर्ष का पार न रहा। अपने संतोष के लिए जब मैं जुदा-जुदा धर्मों की पुस्तकें देख रहा था, तब ईसाई धर्म, इस्लाम, जरश्रष्ट, यहदी और हिंदू धर्मों की पुस्तकों की मैंने अपने संतोष के लिए जानकारी प्राप्त की। समभाव शब्द की भी परी जानकारी उस वक्त मुझे नहीं होगी। लेकिन उस समय के अपने स्मरण ताजा करता हूं, तो मुझे इन धर्मों की टीका-टिप्पणी करने की इच्छा भी कभी हुई हो, ऐसा याद नहीं आता। बल्कि उनकी पुस्तकों को मैं आदर से पढ़ता था। कुछ बातें मेरी समझ में नहीं आती थीं। लेकिन अनुभव से मैं देखता हूं कि जिसे हम समझ न सकें, वह गलत ही है. ऐसा मानने की जल्दबाजी करना भल है। अपने भीतर समभाव बढ़ाने से बहत-

सी गुल्थियां अपने-आप सुलझ जाती हैं। -मंगल प्रभात से साभार।



# मरीजों को खाना खिलाने के लिए होटल बेच दिया

यह उन दिनों की बात है, जब मैं लोअर परेल मित्र मंडल से जुड़ा हुआ था। मैं मुंबई का रहने वाला हूं। बचपन में मैंने बहुत सारी परेशानियां झेलीं, लेकिन पढ़ाई से रिश्ता नहीं तोड़ा। पढ़ने-लिखने के बाद परिजनों की मदद और अपनी कमाई से मैंने एक होटल खोला। मेरा होटल अच्छे से चल रहा था। मैं छोटे-मोटे काम करके लोगों की मदद भी करता था। एक दिन मेरे पास एक लड़की अपनी कैंसर पीड़ित मां को लेकर आई और इलाज की जानकारी मांगी। मैं उन्हें लेकर अपने होटल से थोड़ी दूर स्थित टाटा मेमोरियल अस्पताल पहुंचा तब तक मुझे अस्पताल की ओर से मिलने वाली सब्सिडी की जानकारी नहीं थी। वहां पता चला कि इलाज में बहुत खर्च आएगा, तो मैं उन्हें लेकर सायन अस्पताल चला गया।

बाद में मुझे पता चला कि गलती से मैं उन्हें टाटा मेमोरियल में रियायती इलाज वाले विभाग के बजाय प्राइवेट विभाग में ले गया था और इस भूल के कारण उनका बहुत पैसा खर्च हो गया। मैंने उस लड़की से माफी मांगी, लेकिन लड़की

ने कहा कि मां की जान से बड़ी कोई चीज नहीं है। मैं पहली बार किसी कैंसर पीड़ित के परिजन से इस तरह रूबरू हुआ था। लडकी की बात मेरे दिल में बैठ गई। उस दिन के बाद मैंने कैसर पीड़ित मरीजों की मदद करनी शुरू कर दी। में प्रतिदिन टाटा मेमोरियल में इलाज कराने आए मरीजों और उनके तीमारदारों को अपने होटल में नि:शुल्क भोजन कराने लगा। धीरे-धीरे अस्पताल में जब यह जानकारी फैली, तो होटल में मरीजों के तीमारदारों की संख्या बढ़ती गई। तकरीबन बारह वर्ष तक मैं अकेले ही यह काम करता रहा। इसके बाद जब मुझे लगा कि अब सीमित संसाधनों से काम नहीं चलेगा, तो मैंने होटल बेचकर धन जुटाया और जीवन ज्योति

वालॅटियर के तौर पर तीन डॉक्टर और तीन

मुहैया कराने वाली कैंसर ट्रस्ट की शुरुआत की। रसोई चौबीसों घंटे ट्रस्ट के अंतर्गत मैंने जरूरतमंदों को मुपत दवाएं चलती रहती है। देने के लिए मेडिसिन बैंक खोला है। ट्रस्ट में

कैंसर रोगियों को

दोनों वक्त का खाना

फार्मिसस्ट रोज अपनी सेवाएं देते हैं। कैंसरग्रस्त बच्चों के लिए मैंने एक खिलौना बैंक भी बनाया है। कैंसर पीड़ित चूंकि पूरे देश में मौजूद हैं, ऐसे में मैंने मुंबई के अलावा जलगांव, कोलकाता जैसे शहरों में टस्ट की बारह शाखाएं खोली हैं। इस काम की शुरुआत मैंने अपने पैसों से की थीं, लेकिन जब लोगों को मेरे इरादे के बारे में जानकारी हुई, तो धीरे-धीरे अनेक लोग सहयोग करने लगे। ट्रस्ट में कुछ लोग नियमित तौर से आर्थिक मदद करते हैं। अब मैं सौ बेड का एक अस्पताल बनवाने पर विचार कर रहा हूं। इसके लिए कल्याण के पास पचास एकड़ जमीन भी खरीद ली गई है। यह अस्पताल उनके लिए होगा, जिन्हें दूसरे अस्पताल रखने से मना कर देते हैं। इसके अलावा एक ओल्ड एज होम बनाने की भी योजना है। सेंटर पर इसी तरह एक नेचरोपैथी सेंटर, वर्किंग वुमन हॉस्टल और उच्च शिक्षा ग्रहण करने वाले छात्रों के लिए मुफ्त लाइब्रेरी भी बनने वाली है।

कैंसर रोगियों को दोनों वक्त का खाना मुहैया कराने वाली रसोई चौबीसों घंटे चलती रहती है। यहाँ करीब आठ रसोइए काम करते हैं। रसोई में सुबह नौ बजे खाना बनना शुरू होता है और ग्यारह बजे तक बने हुए खाने की पैकिंग होती है। दोपहर एक बजे तक खाना बंटना शुरू हो जाता है। इसी तरह दूसरी शिपट में दोपहर तीन बजे फिर खाना बनना शुरू होता है, शाम साढ़े पांच बजे तक पैकिंग का काम पूरा कर सात बजे से खाना बांटने का काम शुरू होता है। रसोई में बनने वाले खाने पर रोजाना पच्चीस हजार रुपये खर्च होते हैं। हफ्ते भर के लिए सिद्जियां और बाकी राशन एक बार में ही स्थानीय बाजार से खरीदा जाता है। -विभिन्न साक्षात्कारों पर आधारित।

# राष्ट्रीय सुरक्षा और मीडिया

टलर ने कहा था, 'प्रचार (प्रोपेगंडा) ही ाह हमें सत्ता में लाया है। प्रचार ही हमें वे साधन मुहैया कराएगा, जिनसे हम विश्व विजेता बर्नेंगे।' हिटलर के इन

शब्दों को आतंकवादियों ने पूरी तरह अपनाया है। आतंकी वारदातों से मिलने वाले प्रचार से वे मजबत होते जाते हैं। इसलिए ब्रिटेन की लौह ललना माख्येट थैचर के शब्दों को उद्धत करते हुए राष्ट्रीय सुरक्षा सलहकार अजित डोभाल ने पिछले दिनों कहा कि यदि मीडिया चप रहे, तो आतंकवाद एक झटके में खत्म हो जाएगा। आतंकी निर्दोष लोगों को क्यों मारते हैं? इसलिए कि ऐसी घटनाओं से उन्हें प्रचार मिलता है। यदि वे दस लोगों को मार देते हैं और खबर नहीं छपती, तो ज्यादातर लोगों को पता नहीं चलेगा और वे आतंकित होने से बच जाएंगे।

इसका यह मतलब नहीं कि आतंकी वारदातों की खबरें ही न छापी जाएं। ऐसे में तो लोकतंत्र आत्मविहीन हो जाएगा। पर आतंकवाद के खिलाफ लडाई में मीडिया की भिमका अत्यंत महत्वपूर्ण है। अजित डोभाल का कहना है कि ज्यादातर मौकों पर मीडिया को सही जानकारी भी मुहैया नहीं करवाई जाती, ऐसे में, जहां से भी उन्हें खबर मिलती है, वे प्रसारित कर देते हैं। ऐसी खबर से जनता आतंक से लंडने को तैयार होने के बजाय आतंकित ज्यादा हो जाती है। इसलिए सुरक्षा एजेंसियों की यह जिम्मेदारी बनती है कि पहले वे घटना के बारे में अपनी राय स्पष्ट कर लें. फिर मीडिया को वह खबर दें।

उन्होंने राष्ट्रीय सुरक्षा को लेकर मीडिया नीति बनाने

राष्ट्रीय सुरक्षा के मुद्दे पर मीडिया को कैसे रिपोर्टिंग करनी चाहिए, इस बारे में हमारे यहां कभी सोचा नहीं गया। सरकार इस बारे में मीडिया नीति बनाने की बात कह रही है। मीडिया संगठनों और रौक्षिक संस्थानों को भी आगे बढ़कर इस संबंध में पहल करनी होगी।



गोविंद सिंह

की भी बात कही है। वर्ष 1955 में मीडिया नीति बनी थी, उसके बाद इस दिशा में कोई काम नहीं हुआ। राष्ट्रीय स्रक्षा जैसे संवेदनशील मुद्दे पर मीडिया को कैसे रिपोर्टिंग करनी चाहिए, इस बारे में कुछ सोचा नहीं गया। कभी सेना मुख्यालय की तरफ से युद्ध संवाददाताओं के लिए तीन महीने का कोर्स चलाया जाता था, जो अब एक महीने का हो गया है। इलेक्टॉनिक मीडिया के आने के बाद हालात और खराव हो गए। ज्यादातर पत्रकारों को युद्ध की रिपोर्टिंग तो दूर, मामुली आतंकी वारदात की रिपोर्टिंग करनी भी नहीं आती। ऊपर से चैनलों के स्टुडियो में बैठे एंकर मामूली घटना पर जिस तरह दहाड़ने लगते हैं, जबर्दस्ती

विठाए गए पाक जनरलों या पत्रकारों से बदस्लुकी करते हैं, उससे स्थिति और असहय हो जाती है।

मुख्यधारा का अंग्रेजी मीडिया पश्चिमी मृल्यों का अनुसरण करता है। जब्रकि पश्चिमी मीडिया अपने व्यापारिक हितों की रक्षा करता है। सीएनएन और बीबीसी जैसे चैनलों ने खाड़ी युद्ध के दौरान अमेरिकी भोंपू का काम किया था। दूसरी बार हए खाड़ी युद्ध में भी उनकी बंधक (एम्बेडेड) पत्रकारिता की पोल खुली थी। बीती सदी के नब्बे के दशक में कश्मीर से बाहरी पत्रकारों को खदेड़ने के बाद वहां की पत्रकारिता एकपक्षीय हो गई। ज्यादातर अखबार पथकतावादियों के हाथों के खिलौना बन गए। पर दिल्ली या न्यूयॉर्क के पत्रकारों ने भी श्रीनगर से आने वाली खबरों या पाक प्रायोजित झठी खबरों को ही सत्य मान लिया। वे आतंकियों के खिलाफ कार्रवाई को मानवाधिकार हनन कहने लगे। प्रेस की आजादी के नाम पर वे सब दृश्य दिखाए जाने लगे, जिनसे आतंकवादियों को फायदा पहुंचे। यह सब इसलिए भी हुआ, क्योंकि हमारे पास कोई मीडिया नीति नहीं थी। मीडिया नीति बनाना अकेले सरकार के बृते संभव नहीं है। मीडिया संगठनों और शैक्षिक संस्थानों को भी आगे बढ़कर इस संबंध में पहल करनी होगी।



नवजात मृत्यु दर

देश में तमाम स्वास्थ्य सुविधाओं में सुधार के बावजूद हमारे देश में प्रति हजार जन्म पर नवजात मृत्यु दर चौंतीस है। राज्यों की बात करें, तो इस मामले में मध्य प्रदेश का रिकॉर्ड बहुत खराब है।



# स्नान का पुण्य

संज्ञा अपने पति सूर्यदेव की तीखी किरणों को न सह पाने के कारण पृथ्वी के दूसरे छोर पर रहती थीं। वहीं वह अपनी दो संतानों यम और यमुना को पाल रही थीं। यम ने बड़े होकर अपनी अलग यमपुरी बसा ली और यमराज कहे जाने लगे। वह लोगों को उनके पाप के अनुसार सजा देने का काम करते थे। बहन यमुना भी उनके साथ रहती थीं। पर लोगों को उनके कर्मों की कठोर सजा



उन्होंने भैया से इस बारे में बात की, पर जब वह नहीं माने, तो एक दिन यमपुरी से निकल गईं और गोलोक यानी भगवान विष्णु के धाम में जाकर रहने लगीं। लंबे समय बाद यमराज को अपनी बहन की याद आई। उन्होंने बहन का पता लगाने के लिए अपने दूतों को भेजा। जब दूत यमुना को नहीं ढूंढ पाए, तो यमराज खुद उन्हें खोजने निकले। खोजते-खोजते आखिर गोलोक धाम में उन्हें

देने से वह सहमत नहीं हो पाई। पहले

यमुना दिख गई। यमुना ने अपने भैया का खूब आदर-सत्कार किया। यमुना के प्यार से यमराज का हृदय पिघल गया और उन्होंने बहन से वर मांगने को कहा। यमना चूंकि समस्त प्राणियों के प्रति करुणा रखती थी, अतः उन्होंने भैया से कहा कि मैं बस इतना चाहती हूं कि मेरे जल में स्नान करने वाला यमपुरी न जाए। यमराज ने कहा, ऐसा ही होगा। जिस तिथि को यमराज अपनी बहन से मिलने गए थे, वह कार्तिक मास के शुक्ल पक्ष की द्वितीया थी, अतः इस तिथि को भैयादूज का त्योहार मनाया जाता है।



# केतन, मीनल और खुशियां

मीनल की कहानी, जिससे केतन को जीवन में जरूरी छोटी-छोटी खुशियों के बारे में पता चला।



केतन मॉल से सामान लेकर निकल ही रहा था कि उसने देखा कि उसके बचपन की दोस्त मीनल किसी शख्स के साथ मॉल के अंदर घुस रही थी। मीनल को केतन करीब बीस साल बाद देख रहा था। मीनल उस शख्स का हाथ पकड़ कर ऐसे चल रही थी, जैसे दोनों के बीच बहुत प्यार हो। केतन ने सोचा. यह जरूर मीनल का पति होगा। मीनल से मिलने के लिए वह उन दोनों के पीछे-पीछे वापस मॉल के अंदर चला गया। केतन ने मीनल को आवाज लगाई, तो वह एक बार में ही उसे पहचान गई। दोनों वहीं मॉल की एक कॉफी शॉप में बैठकर बातें करने लगे। मीनल ने केतन से उसकी पत्नी के बारे में पूछा। केतन बोला, हमें तो शादी को बीस साल हो गए। शायद इसीलिए अब तुम दोनों जैसा युवा प्यार हमारे बीच नहीं बचा। मीनल के पति ने मुस्कराकर कहा, हमारी शादी को भी तो बीस साल होने को हैं। यह सून केतन हैरान हो गया। उसने मीनल से पूछा, मैं समझ नहीं पाया कि तुम दोनों ने अपने रिश्ते को इतना युवा कैसे बना रखा है। मेरी पत्नी से मेरा रिश्ता ऐसा क्यों नहीं रहा? जबकि मैं उसकी हर ख्वाहिश पूरी करता हूं। मीनल बोली, रिश्ते बड़ी-बड़ी चीजों से नहीं, छोटी-छोटी खुशियों से बनते हैं। मेरे पति रोज ऑफिस जाने से पहले आज भी ऐसे गले मिलते हैं. जैसे किसी लंबी यात्रा पर जा रहे हों। आज भी मुझे सुबह की चाय वही बनाकर पिलाते हैं। कई बार शाम को आते वक्त मेरे लिए फूल ले आते हैं। हर छुट्टी वाले दिन किचन में मेरा हाथ बंटाते हैं। साथ रहने के लिए जरूरी नहीं कि हम बड़ी-बड़ी ख़ुशियां ढूंढें। हर रोज छोटी-छोटी खुशियां, छोटे-छोटे पल हमें एक दूसरे के और करीब ले आते हैं। केतन सोचने लगा, छोटे-छोटे पलों में भी खुशियों की महसूस किए हुए एक अरसा हो गया।

अगर रिश्तों को ढंग से निभाया जाए, तो वे कभी पुराने नहीं होते।

# बगदादी का खेल खत्म

अमेरिका के राष्ट्रपति डॉनल्ड ट्रंप ने रविवार को औपचारिक रूप से ऐलान किया कि आतंकी संगठन आइसिस के सरगना अबू बकर अल-बगदादी को मार गिराया गया है। बगदादी के मारे जाने के दावे पहले भी किए जा चुके हैं और रूस को अब भी इस पर यकीन नहीं है। लेकिन जब ट्रंप ने बाकायदा प्रेस कॉन्फ्रेस करके इसकी पुष्टि की है तो अविश्वास का कोई कारण नहीं है। ट्रंप के अनसार अमेरिकी सेना के स्पेशल कमांडोज



मारा गया गया आइसिस सरगना

ने सीरिया के इदलिब प्रांत के सुदूर गांव बारिशा में शनिवार की रात बगदादी के खिलाफ विशेष ऑपरेशन चलाया। पूरी तरह घिर जाने के बाद बगदादी ने धमाका करके खुद को उड़ा लिया। इस तरह बगदादी भी उसी तरह की कार्रवाई में मारा गया जिस तरह ओसामा बिन लादेन मारा गया था। बगदादी लादेन से बहुत प्रभावित था और उसी के नक्शेकदम पर चलते हए उसकी मौत का बदला लेना चाहता था। इस तरह दुनिया

को दो खूंखार आतंकियों से मुक्ति मिली जिन्होंने अपने खूनी खेलों से परी मानवता को थर्रा दिया था। इस्लामी आतंकवाद का घणित महावरा उनके कारण ही शुरू हुआ। उनके कृत्यों से इस्लाम की उदारवादी छवि कमजोर पड़ी और कई मुल्कों में मुस्लिम समुदाय को संदिग्ध छवि का शिकार होना पड़ा। बगदादी असल में वहाबी विचारधारा से प्रेरित था जिसका उद्देश्य दुनिया में इस्लामी उसूलों पर आधारित मध्यकालीन राज्य की पुनर्स्थापना बताया गया। उसने खुद को खलीफा घोषित किया और सीरिया-इराक के कई इलाकों पर अपना शासन चलाया। बगदादी का मकसद एक मॉडल इस्लामी राज्य कायम करके धीरे-धीरे उसका प्रसार करना था। लेकिन यह उसका सैद्धांतिक पहल था। व्यवहार में वह पश्चिम एशिया की शिया-सुन्नी राजनीति की पैदाइश था। शियाओं के खिलाफ उसे एक मोहरे की तरह इस्तेमाल किया गया। उसका संगठन आइसिस शियाओं के खिलाफ गहरी नफरत से भरा था और उसने सभी गैर-सिन्नयों के खिलाफ खनी अभियान चलाए। उसकी विचारधारा ने भारत समेत दुनिया के कई चरमपंथियों को प्रभावित किया। उससे असर में कई देशों के नौजवान आइसिस जॉइन करने पहुंच गए। जो संगठन में शामिल नहीं हुए, वे निजी स्तरों पर ही कार्रवाई करने लगे। अनेक देशों में उन्होंने आतंकी गतिविधियां संचालित कीं। अब भी यह कहना मुश्किल है कि बगदादी के मारे जाने से आइसिस की कमर पूरी तरह टूट जाएगी। कई विशेषज्ञ मानते हैं कि उसके मारे जाने के बाद कोई और उसकी कमान संभाल लेगा और संगठन पहले की ही तरह चलता रहेगा क्योंकि इसका एक मजबूत नेटवर्क दुनिया भर में फैला हुआ है। एक कड़वी सचाई यह है कि कुछ ताकतवर देशों ने अपने हितों के लिए



# तकनीकी की रेलमपेल

कई बार ऐसे संगठनों को हथियारों और अन्य तरीकों से सहायता दी है।

अगर आतंकवाद को समाप्त करना है तो ऐसी सरकारों से भी सख्ती से

पेश आना होगा। लादेन और बगदादी का हश्र बताता है कि हिंसा और

चंद्रभूषण

टेक्नॉलजी की उठापटक के मामले में नब्बे का दशक अद्वितीय समझा जाएगा। कोई चीज आसमान से उतर कर अचानक जमीन पर छा जाती। फिर देखते-देखते ऐसे गायब होती जैसे गधे के सिर से सींग। इन बदलावों के पीछे हजारों-लाखों परिवारों की बर्बादी की कहानी भी मौजूद होती, लेकिन उस तरफ किसी का ध्यान मुश्किल से ही जा पाता था। 1990 में मैंने दिल्ली में पेजर का चलन शुरू होते देखा था, जो जल्द ही किसी फैशन स्टेटमेंट की शक्ल ले बैठा। टी-शर्ट तब कम लोग पहनते थे। पैंट में खंसी कमीज, चौड़ी बेल्ट और उस पर सामने दाईं तरफ सजा अल्फा-न्यूमेरिक पेजर। महानगरों में किराये पर रहते हुए घूम-फिरकर दिहाड़ी मारने वाले पेजरधारी शाम को ठिकाने पर पहुंचते तो उन्हें पता चल जाता कि उनसे कौन, कहां, किस नंबर पर संपर्क करना चाहता था। नए-नए पीसीओ बूथ भी उसी समय खुले थे, जहां बटन वाले फोन पर अगले दिन का प्रोग्राम फिक्स हो जाता था।

इस पेजर और पीछे-पीछे पीसीओ बूथ को भी भारतभूमि पर आने और यहां से जाने में बमुश्किल दस साल लगे। इनको और साथ में कैमरा, ट्रांजिस्टर, टेप रिकॉर्डर, जेबी म्यजिक सिस्टम और 'डिजिटल डायरी-कैलकलेटर' को भी दनिया से उठा देने का श्रेय जिस एक चीज को जाता है, वह मोबाइल फोन शुरू में एक भद्दी, जेबजलाऊ चीज के रूप में हमारे सामने प्रकट हुआ। शायद 1996 की बात है, दो साल पुराने एक प्राइवेट टीवी न्यूज प्रोग्राम ने, जो जल्द ही स्वतंत्र न्युज चैनल की शक्ल लेने वाला था, ऐसा ही ईंटनुमा एक फोन अपने कामकाज के सिलसिले में महीने भर के लिए मेरे एक मित्र के सुपुर्द कर रखा था। यह चीज अपने पास न होने का हीनताबोध तब किसी में नहीं दिखता था क्योंकि भारी कीमत के चलते तब इसे छापाखाने जैसा कोई संस्थागत संसाधन ही माना जाता था। इसकी इनकमिंग कॉल उस समय 16 रुपये और आउटगोइंग 32 रुपये प्रति मिनट हुआ करती थी!

एक और चीज उन दिनों खूब नजर आती थी- वीएचएस, जिसका जीवनकाल मोटे तौर पर 1980 से 1995 तक रहा। आम लोग इसे फिल्मों का टेप कहते थे जिसे चलाने के लिए वीसीपी नाम की एक डिवाइस को टीवी से जोडना पड़ता था। गांवों में नौटंकी, बिरहा और बाकी लोक कलाओं को यह बेहुदा चीज अकेले निगल गई। मुंबइया सिनेमा इसके खौफ में कुख्यात स्मगलरों का पोसुआ बन गया। बहरहाल, पहले सीडी फिर डीवीडी ने वीएचएस को पांच साल के अंदर ही स्वर्गवास मेल पर बिठा दिया लेकिन इन डिस्कों के नए अवतार ब्ल-रे का शरू में जितना हल्ला था. वह कंप्यटर, मोबाइल और इंटरनेट की तेज तरक्की के सामने व्यर्थ सिद्ध हुआ। इन भीषण बदलावों ने समाज में बहुतेरे स्मार्ट लोगों को जन्म दिया, लेकिन कुछेक हमारे जैसे कूल डूड भी पैदा किए, जो टेक्नॉलजी और गैजेट्स को कोई भाव नहीं देते।

## छत पर ऊंट

बल्ख (अफगानिस्तान) के शासक इब्राहिम अपना ज्यादातर वक्त खुदा की उपासना में बिताते थे। राजमहल में रहते हुए भी वह भिवत और साधना में व्यस्त रहते थे। एक रात जब वह अपने महल में सो रहे थे तो छत पर किसी के चलने की आहट से उनकी नींद टूट गई। उन्होंने देखा कि छत पर कोई व्यक्ति कुछ खोज रहा था। उन्होंने आवाज लगाई, 'तुम कौन हो और इस वक्त राजमहल की छत पर क्यों घूम रहे हो?' वह व्यक्ति अपने काम में तल्लीन रहा। इब्राहिम गुस्से से बोले, 'मूर्ख, तुम नहीं जानते कि तुम कितना जघन्य अपराध कर रहे हो? हो सकता है तुम्हें सजा-ए-मौत दी जाए।' वह बोला, 'हुजूर, शायद आप यह तो नहीं पूछ रहे हैं कि इतनी

रात मैं यहां क्या कर रहा हूं? मैं यहां अपना ऊंट खोज रहा हूं।' इब्राहिम ने अपना माथा पीट लिया। शायद ही दुनिया में इससे बड़ा मूर्ख कोई होगा, यह सोचते हुए इब्राहिम बोले, 'ऊंट, वह भी छत पर! तुम्हारा दिमाग तो नहीं फिर गया है।' इस पर वह शख्स बोला, 'इसमें दिमाग फिरने वाली क्या बात है? आप भी तो ऐशोआराम भरे महल में खुदा को खोजने की कोशिश कर रहे हैं।' कहकर वह व्यक्ति चला गया। इब्राहिम सन्न खड़े रहे। उसकी बात उन्हें झकझोर रही थी। वह सोचने लगे, वह न तो कोई साधारण व्यक्ति था और न उसकी बात साधारण थी। वाकई विलासिता भरी जिंदगी में खुदा की तलाश का क्या अर्थ है? राजमहल में

खुदा की खोज क्या वैसी ही नहीं, जैसी छत पर ऊंट की तलाश? इब्राहिम का माथा ठनका। उस असाधारण व्यक्ति को खोजने वह दौड़ पड़े। आखिरकार महल से थोड़ी दूरी पर ही वह सड़क पर मिल गया। इब्राहिम उसके चरणों में लोट गए और कहने लगे, 'मुझे अपनी शरण में ले लो।' वह व्यक्ति थे संत खिज्र। इब्राहिम उनके शिष्य हो गए। संकलन : बेला गर्ग

और पढने के लिए देखें www.ekda.nbt.in

# इनकी मूल समस्या अधिकारियों के व्यक्तिगत लाभ हैं जो घूस और अकुशलता से हासिल होते हैं

# विलय से नहीं सुधरने वाले हैं सरकारी बैंक



की जरूरत पर बुनियादी रूप से विचार करने की जरूरत है। सत्तर के दशक में सरकारी बैंकों के राष्ट्रीयकरण के पीछे मुल विचार यह था कि ग्रामीण क्षेत्रों और छोटे उद्योगों को ऋण उपलब्ध कराने के लिए सरकारी बैंक कारगर कदम उठाएंगे।

यह उद्देश्य हासिल भी हुआ है। 1952 में देश में बैंकों की कुल शाखाएं 4061 थीं जो 1969 में 8262 हो गईं। यानी 17 वर्षों में शाखाओं की संख्या मात्र दोगुनी हो पाई। लेकिन 1970 से 1990 के बीच शाखाओं की संख्या बढ़कर 59,752 हो गई। यानी इन 20 वर्षों में शाखाओं में लगभग सात गुना वृद्धि हुई। 2010 में यह 50 प्रतिशत और बढ़ गई, जिससे पता चलता है कि बैंकों के राष्ट्रीयकरण के बाद देश में बैंकिंग प्रणाली का भारी विस्तार हुआ है।

#### 🔳 निजीकरण ही समाधान

इसी प्रकार कृषि और छोटे उद्योगों के प्राथमिकता क्षेत्र को दिए जाने वाले ऋण राष्ट्रीयकरण के पहले लगभग 2.2 प्रतिशत पर टिके हुए थे। 1989 तक ये बढकर 16 प्रतिशत हो गए जिससे स्पष्ट है कि बैंकों का राष्ट्रीयकरण अपने उद्देश्य को हासिल करने में सफल हुआ है। लेकिन इन बैंकों की सफलता के साथ-साथ इनके घाटे भी बढ़ते गए हैं। अर्थशास्त्र का एक हैं। चुनिंदा भगोड़ों को छोड़ दें तो निजी बैंक

ने प्रमुख विचार यह है कि कुछ भी मुफ्त नहीं के मिलता है, इसलिए ग्रामीण शाखाओं के विस्तार का मल्य हम सरकारी बैंकों के बढते घाटे के रूप में अदा कर रहे हैं। यही कारण है कि शाखाओं का जो विस्तार 2010 तक हुआ था वह अब पलटने लगा है। 2018 में ग्रामीण क्षेत्रों में बैंकों की कुल शाखाएं घटकर 37 प्रतिशत रह गई हैं। राष्ट्रीयकरण से बैंकिंग व्यवस्था का जो विस्तार हुआ है वह अंततः देश पर बोझ बन गया है। बीते पांच सालों में केंद्र सरकार ने तीन लाख करोड़ की रकम सरकारी बैंकों में निवेश की है और आज इन बैंकों की शेयर बाजार में

कुल कीमत इससे कम है। इसका अर्थ यह हुआ कि इन बैंकों ने अपनी पर्व की पंजी का परा भक्षण कर लिया है। बैंकों के राष्ट्रीयकरण के बाद उनकी जो भी पूंजी थी वह समाप्त हो गई है। केवल पिछले पाँच वर्षों में इनमें निवेश की गई पूंजी मात्र ही आज जीवित है। सरकारी बैंकों की खस्ता हालत इस

सरकारी बैंकों में केंद्र सरकार ने तीन लाख करोड़ की रकम बीते पांच सालों में निवेश की है और आज इन बैंकों की शेयर बाजार में कुल कीमत इससे कम है

बात से भी दिखती है कि इनमें विदेशी निवेश मात्र 4.8 प्रतिशत हुआ है जबिक निजी बैंकों में लगभग 34 प्रतिशत। यह बताता है कि विदेशी निवेशकों को निजी बैंकों पर अधिक भरोसा है। सरकारी बैंकों के इस हाल का मुख्य कारण इनके अधिकारियों के व्यक्तिगत स्वार्थ



भोपाल में सार्वजनिक क्षेत्र के बैंकों के विलय के खिलाफ कर्मचारियों की हड़ताल

सफल हो क्योंकि बैंक की सफलता से ही उसके व्यक्तिगत लाभ बढ़ते हैं। इसके विपरीत सरकारी बैंकों के अधिकारियों के लिए लाभप्रद यह होता है कि बैंक को घाटा लगाकर वे व्यक्तिगत लाभ हासिल करें। इसके लिए वे घूस लेकर ऋण देते हैं और बैंक डूबता है।

इसमें अब तक चले आ रहे राजनीतिक हस्तक्षेप का भी निश्चित रूप से योगदान था लेकिन वर्तमान में मोदी सरकार द्वारा सियासी दखल न देने के बावजूद बैंकों का घाटा बढ़ते जाना यह बताता है कि इसका मूल कारण सरकारी कर्मियों के व्यक्तिगत स्वार्थ हैं।

बैंकों का निजीकरण है। सरकार द्वारा स्थापित ऋण देने पर मजबूर करना चाहिए।

का मालिक अंततः चाहता है कि उसका बैंक पीजे नायक कमिटी ने 2014 में इस बारे में संस्तुति दी थी, जिस पर दुर्भाग्य से सरकार ने अब तक अमल नहीं किया है। निजीकरण के विरोध में मुख्य तर्क निजी बैंकों द्वारा प्राथमिक क्षेत्र पर ध्यान न देने का है। लेकिन यह रिजर्व बैंक की अकुशलता का परिणाम है। रिजर्व बैंक के पास पर्याप्त अधिकार उपलब्ध हैं, जिससे वह निजी बैंकों को प्राथमिक क्षेत्र को ऋण देने के लिए बाध्य कर सकता है।

इस दुष्टि से रिजर्व बैंक के निवर्तमान गवर्नर ऊर्जित पटेल ने ठीक ही कहा है कि देश की बैंकिंग व्यवस्था की समस्या नियंत्रण में खामियों के कारण पैदा हुई है इसलिए हमें सरकारी बैंकों इस समस्या का एकमात्र उपाय सरकारी का निजीकरण करके इन्हें प्राथमिक क्षेत्र को

इस संदर्भ में सरकार ने कमजोर बैंकों का सुदृढ़ बैंकों में विलय करने का जो निर्णय लिया है वह व्यर्थ की कवायद दिखता है। जब मजबूत बैंक अपनी ही पुंजी बचा कर नहीं रख पा रहे हैं तो घाटे में चल रहे बैंकों के विलय से उनकी पूंजी का संरक्षण कैसे हो सकता है? जानकारों का कहना है कि विलय का उद्देश्य सिर्फ इन बैंकों के घाटे को छुपाना है। इन सभी बैंकों को वर्तमान में सरकारी कोष से पूंजी उपलब्ध कराई जा रही है जो सरकारी वित्तीय घाटे पर बोझ बन रही है। सुदृढ़ बैंकों में विलय करने के बाद यह निवेश जमे-जमाए बैंकों की पूंजी से होने लगेगा और सरकार के खाते से निवेश का सिलसिला समाप्त हो जाएगा।

सरकार के स्थान पर ताकतवर बैंक सीधे ही अपनी पुंजी कमजोर बैंकों को देंगे और सरकार के खाते में यह खर्च नहीं दिखेगा। लेकिन देर-सबेर यह खर्च ताकतवर सरकारी बैंकों को भी तबाह करेगा और इन्हें बचाने की कोशिशें व्यर्थ हो जाएंगी। इस थोड़े समय के दिखावे भर के लिए सरकार ने इन बैंकों का विलय किया है।

#### 🔃 हंडताल का तक

बैंक कर्मियों की हड़ताल भी दुर्भाग्यपूर्ण है। सरकारी बैंकों की मूल समस्या सरकारी कर्मियों के व्यक्तिगत लाभ हैं जो घूस और अकुशलता से हासिल होते हैं। अपने स्वार्थ बनाए रखने के लिए ही इनके द्वारा हड़ताल की गई है। सरकार को चाहिए कि विलय के प्रपंच में इनकी हड़ताल का सामना न करके निजीकरण के प्रपंच में इनकी हड़ताल का सामना करे। यदि कर्मियों की हडताल का सामना करना ही है तो निजीकरण के विषय पर करना चाहिए न कि विलय के व्यर्थ विषय पर।

# है तो जरूर, पर होकर भी न होने के बराबर है



शिकायत दर्ज कराते हैं कि साहब! नल है, मगर उसमें पानी नहीं आता। वे शायद नहीं जानते कि इस देश में चीजें होती ही इसलिए

हैं ताकि उनमें वह न हो जिसके लिए वे होती हैं। नल में पानी नहीं आता। हैंडपंप हैं, मगर वे चलते नहीं हैं। नदियां हैं, मगर वे बह नहीं रहीं। विभाग है, जो काम नहीं करता। टेलिफोन लगाया, मगर लगा नहीं। अफसर है, मगर छुट्टी पर है। बाबू है, मगर

उसे पता नहीं। आवेदन दिया था, पर मंजूर नहीं हुआ। रिपोर्ट लिखाई थी, मगर कुछ हुआ नहीं। जांच हुई, पर परिणाम नहीं निकले। योजना स्वीकृत है, पर बजट मंजूर नहीं हुआ। बजट स्वीकृत है, पैसा नहीं आया। पद हैं, मगर खाली हैं। आदमी योग्य था, मगर तबादला हो गया। अफसर ठीक है, उसके मातहत ठीक नहीं हैं। मातहत काम करना चाहते हैं, मगर ऊपर से ऑर्डर तो मिले। मशीन आ गई, बिगड़ी पड़ी है। मशीन ठीक है, बिजली नहीं है। बिजली है, मगर तार खराब है। उत्पादन हो रहा है, मगर बिक नहीं रहा।

खट्टर कैसे बचे?

मांग है तो पूर्ति नहीं। पूर्ति है तो मांग नहीं। यात्री हैं, मगर टिकट नहीं मिल रहा। टिकट मिल गया, रेल लेट है। रेल आई, मगर जगह न थी। जगह थी, उस पर सामान रखा था। एयर से जा रहे हैं, मगर वेटिंग लिस्ट में हैं। सीट कनफर्म है, फ्लाइट कैंसल हो गई।

> जांच हुई, पर परिणाम नहीं निकले। योजना स्वीकृत है, बजट मंजूर नहीं हुआ। बजट स्वीकृत है, पर पैसा नहीं आया। पद हैं, खाली हैं। आदमी योग्य था, मगर तबादला हो गया। मशीन आ गई, बिगड़ी पड़ी है। मशीन ठीक है, बिजली नहीं है। बिजली है, तार खराब हैं

घर पहुंचे, मिले नहीं। मिले, मगर जल्दी में थे। तार भेजा था, पहुंचा नहीं। चिट्ठी भेजी, जवाब नहीं आया। पोस्टमैन गुजरा था, हमारा कोई लेटर नहीं था। आए, मगर आते ही बीमार हो गए। इंजेक्शन दिया, मगर कुछ हुआ नहीं। अस्पताल गए, बेड खाली नहीं था। बेड पर पड़े हैं, कोई पूछ नहीं रहा।



शिकायत करें, मगर कोई सुनने वाला नहीं है। नेता है, मगर कौन सुनता है। उसने सुन लिया, मगर कुछ कर नहीं सका। शिलान्यास हुआ था, इमारत नहीं बनी। इमारत बनी है, दूसरे काम में आ रही है। काम चल रहा है, पर हमें क्या फायदा। स्कूल है, एडिमशन नहीं है। पढ़ने गए थे, बिगड़ गए। टीम भेजी थी, हारकर लौटी। प्रोग्राम हुआ, मगर जमा नहीं। हास्य का था, हंसी नहीं आई।

कहा था, बोले नहीं। खबर थी, मगर वह

अफवाह निकली। अपराध था, न्याय नहीं हुआ। संपादक के नाम पत्र भेजा था, छपा नहीं। कविता लिखी थी, कोई सुनने वाला नहीं। किताब छपी थी, बिकी नहीं। चाहिए, पर मिल नहीं रही। आई थी, चली गई। गए थे, मुलाकात न हुई। कुर्सी पर बैठा है, ऊंघ रहा है। फॉर्म भरा था, गलती हो गई। क्या बोले, कुछ समझ न आया। वादा किया था, भूल गए। याद दिलाया, तब तक उनका विभाग बदल गया।

फोन किया, बाथरूम में गए थे। दफ्तर किया, मीटिंग में थे। डिग्री मिल गई, नौकरी नहीं मिली। जब अनुभवी हुए, रिटायर कर दिए गए। अकाउंटेंट हैं, गबन कर गए। ढूंढ़ा बहुत, मिले नहीं। पुलिस है, चोर से मिली हुई है। पैसा है, ब्लैक का है। पूंजी जुटाई, मशीन के भाव बढ़ गए। फ्लैट खाली हैं, दे नहीं रहे। बेचना है, कोई खरीदार नहीं है। लेना चाहते हैं, मगर बड़ा महंगा है।

बरसात आ गई, पानी नहीं गिरा। दिल है, कहीं लगता नहीं। मनुष्य है, मानवता नहीं। जीवित है, आत्मा मर गई।

कितना कुछ होकर भी इस देश में वह नहीं है, जिसके लिए इतना कुछ है। आप हैं कि नल में पानी नहीं आने की शिकायत कर रहे हैं।

(11 जून 1988 को प्रकाशित)

# THE SPEAKING TREE जनहित से जुड़कर श्रेष्ट बन जाते हैं

हरीश बडथ्वाल

धन और ज्ञान

स्वयं को सशक्त बनाने के आह्वान में स्वामी विवेकानंद ने कहा, 'जीवन नाम है शक्ति का और निर्बलता मृत्यु की ओर ले जाती है।' उनका आशय है, जीवंतता और हौसले जीवन को जड़ नहीं होने देते और इनके अभाव में जीवन बुझा, नीरस हो जाता है। शक्तिसंपन्न व्यक्ति जीवनपथ पर यदाकदा आती मुश्किलों और विडंबनाओं के समक्ष घटने नहीं टेकता बल्कि उनसे निर्भीकता से निबटता है। व्यक्ति जितना अधिक सशक्त और समर्थ होगा, उसे दूसरों का सहयोग और समर्थन उसी अनुपात में मिलेगा, वह मनचाहा भी उतनी ही जल्दी हासिल करेगा। इसके बावजूद शक्ति, संपन्नता, ख्याति, वर्चस्व या किसी व्यवस्था में शीर्ष स्थान पाना स्वयं में परम लक्ष्य नहीं हो सकते। ये सन्मार्ग से भटकाने वाले लुभावने टीले हैं। इन्हें पाने के लिए प्रयासरत रहना उसी सीमा तक उचित है जहां तक ये किसी बड़े लक्ष्य प्राप्ति का साधन बने रहते हैं।

लौकिक शक्ति और सामर्थ्य को सर्वोपरि मानने वाले इन्हें पाकर इतराने लगते हैं। अहंकार में वे दूसरों को कमतर आंकते हुए स्वयं और प्रकृति से दूर चले जाते हैं। एक जूनियर साइंटिस्ट लैबोरेटरी के कार्य में इतना व्यस्त रहता है कि कोई स्पर्श करे तो भी उसे पता नहीं चलता। कालांतर में वही जब सीनियर या प्रमुख वैज्ञानिक बन जाता है तो उसका मिजाज बदल जाता है। हाथ में ब्रीफकेस थामे ऑफिस जाने में भी उसका सम्मान आहत होने लगता है। अब उसे लगने लगता है कि दफ्तर ही नहीं, सामाजिक जीवन में भी उसका दबदबा रहे।

अपने अज्ञान का पता रहने से सच्चे ज्ञानी को अपने ज्ञान पर गर्व नहीं होता। सच्चे ज्ञानी अपनी शक्तियों का उपयोग निजी वर्चस्व पुख्ता करने में नहीं बल्कि चुपचाप देश-समाज के हित में करेंगे। ऐसे लोग चाटकारों. प्रशंसकों व अंधभक्तों को पास नहीं फटकने देते। वे समान सोच वालों की तलाश में रहते हैं। दूसरे छोर पर विचार करें तो संसार को निर्जन वन या नदी किनारे एक पांव पर खड़े महीनों से तप में लीन साधकों-संतों की दरकार नहीं है। अपनी शक्ति, सामर्थ्य या ओहदे के बूते दूसरों को प्रभावित करना, बेहतरीन वस्तुओं को अपनी बपौती समझना और निजी प्रभावक्षेत्र विस्तृत करना क्षुद्र मानसिकता और रिक्त अंतःकरण का परिचायक है। ऐसी फितरत वाला भले ही सम्मान मिलते रहने की खुशफहमी में रहे किंतु उसे तुष्टि नहीं मिलती क्योंकि वह जानता है कि सम्मान तो दिल से दिया जाता है।

अमेरिकी विचारक रॉबर्ट कोलियर कहते हैं, 'मन में यह विचार न धरें कि बेहतरीन चीजें सदा आपके अधिकार में रहेंगी। इनका देन-लेन चलाते रहना है। बीज के प्रवाह को अवरुद्ध न होने दें, इसे आरोपित करना है, नई कटाई करनी है। धन, संपदा को सीने से नहीं लगाएं। इसे प्रवहमान रखने से आपको अन्य प्रकार की संपदा मिलेगी।' मानवीय हित के बदले निजी स्वार्थ के लिए शक्ति या सामर्थ्य प्रयुक्त करने वाला व्यक्तिगत निष्ठाएं जुटाता है, श्रेष्ठ नैतिक या मानवीय मूल्यों से उसे सरोकार नहीं रहता। नामी उद्योगपति एसएल किर्लोस्कर के विचार

ध्यान देने लायक हैं। उनका कहना था- व्यक्तिगत निष्ठा एक आम बीमारी है। मैं नहीं चाहता कि मेरी पोती मेरे लिए निष्ठावान रहे! बेशक निष्ठाएं अच्छे जीवन के लिए आवश्यक हैं किंतु व्यक्ति विशेष के प्रति नहीं।' कस्तूरी और मृग की तरह अधिकतर व्यक्ति अपने भीतर निहित उस प्रकाशपुंज को नहीं पहचानते जो उन्हें परमशक्ति से जोड़ता है।

पाबंदियों के बावजूद दिल्ली-एनसीआर में जमकर फूटे पटाखे - एक खबर - हम क्या कीट-पतंगों से कमजोर हैं?

हरियाणा के नतीजों को लेकर बीजेपी की सेंट्रल लीडरशिप



राजनात

पालिटाक

की नब्ज पकड़ पाने में खट्टर नाकाम रहे। लोकसभा चनाव के वक्त राज्य में पार्टी का जो प्रदर्शन था वह मोदी के नाम और चेहरे पर था। विधानसभा के चुनाव में वोटर्स की कसौटी पर खट्टर थे और वह फेल साबित हुए। कहा जाता है कि सरकार बनाने से पहले शीर्ष स्तर पर इस मुद्दे पर

किसी नए को मुख्यमंत्री बनाने पर सोचा जाए। महसुस किया गया कि जाट वोटर्स में बीजेपी के खिलाफ जिस तरह का पोलराइजेशन पाया गया है. उसमें गैर जाट का पार्टी के साथ बने रहना ज्यादा जरूरी है। खट्टर गैर जाट लीडर के रूप में मख्यमंत्री बनाए गए थे और वह पांच साल लगातार अपने कामकाज से यह संदेश भी देते रहे कि अब हरियाणा में जाटों का एकाधिकार नहीं

रहा। अगर उन्हें हटाया जाता है तो गैर जाटों के बीच गलत संदेश जाने का खतरा हो सकता है। एक खतरा यह भी था कि किसी अन्य गैर जाट को मख्यमंत्री बनाने से खट्टर उसके लिए मश्किल खड़ी कर दें। जीते विधायकों में बड़ी संख्या खट्टर के विश्वासपात्रों की है। ऐसे में पार्टी ने खड़र से किसी भी तरह 'छेडछाड' न करने का फैसला किया। लेकिन पार्टी लीडरशिप ने अपने दूसरे मुख्यमंत्रियों तक संदेश पहुंचाया है कि उन्हें हरियाणा से सबक लेते हुए इलाकाई वोटर्स की नब्ज पर ध्यान केंद्रित करना होगा।

### फैसले पर सवाल

महाराष्ट्र और हरियाणा विधानसभा चुनाव के साथ यूपी की 11 विधानसभा सीटों के लिए हुए उपचुनाव ने वहां की राजनीति की दिशा तय कर दी है। सबसे मुश्किल घड़ी बीएसपी के लिए आ खड़ी हुई है। लोकसभा चुनाव के समय समाजवादी पार्टी से ज्यादा सीट जीतने के बाद उसके साथ चल रहे गठबंधन को तोड़ने के फैसले पर अब उनकी पार्टी के अंदर ही सवाल उठने लगे हैं और यह पूछा जाना लगा है कि क्या कोई ऐसा रास्ता निकल सकता है

कि 2022 के चुनाव में दोनों पार्टियां फिर से गठबंधन कर सकें। हालांकि समाजवादी पार्टी की तरफ से इसका जवाब फिलवक्त 'ना' में ही है। पॉलिटकल सर्किल में कहा जा रहा है कि बीएसपी



के लिए जो मुश्किल खड़ी हुई है उसकी वजह खुद पार्टी चीफ मायावती का गलत आंकलन है। लोकसभा चुनाव में समाजवादी पार्टी से ज्यादा सीट जीतने पर मायावती को लगा था कि उनकी स्वीकार्यता ज्यादा है, उन्हें किसी अन्य पार्टी के साथ गठबंधन की जरूरत नहीं है, जबकि जमीनी

हकीकत यह थी समाजवादी पार्टी से गठबंधन होने की वजह से मुस्लिम वोटर्स का एकमृश्त समर्थन बीएसपी को हासिल हुआ था। यह गठबंधन जैसे ही टूटा, मुस्लिम वोटर्स ने उससे किनारा कर विमर्श हुआ था कि खट्टर को ही रिपीट किया जाए या उनकी जगह 🛾 लिया। नतीजा यह हुआ कि पहले एक विधानसभा सीट के लिए

हुए उपचुनाव में बीएसपी को मुख्य लड़ाई से बाहर रहना पड़ा, उसके बाद 11 विधानसभा सीटों पर भी वह मुख्य लड़ाई से बाहर रही। उधर समाजवादी पार्टी न केवल तीन सीट जीतने में कामयाब रही बल्कि उसने अपने को मुख्य विपक्षी पार्टी के रूप में भी स्थापित कर लिया है। नतीजों से मिली ऊर्जा ने समाजवादी पार्टी का आत्मविश्वास बढ़ाया है। पार्टी यह कह पाने की स्थिति में है कि पूर्व के

चनावों में गठबंधन चक थी. अब वह भविष्य में किसी भी पार्टी से किसी तरह का गठबंधन नहीं करेगी।

### मुश्किल में 'टीम राहुल

हरियाणा और महाराष्ट्र के चुनाव नतीजों ने 'टीम राहुल' के लिए भी मुश्किल खड़ी कर दी है। दोनों राज्यों से जो संदेश निकला वह यही है कि राहुल का राज्यों में नई लीडरशिप खड़ी करने का जो कॉन्सेप्ट था, वह गलत था। पार्टी को फिलहाल राज्यों के अपने पुराने वफादारों के साथ खड़े होना पड़ेगा। नई लीडरशिप जोश से भरी हो सकती है, लेकिन चुनाव जिताने की

कैपिसिटी फिलहाल उसमें नहीं है। राज्यों के पुराने धुरंधरों के साथ राहुल की न पट पाने की वजह यह है कि वे राहुल को ज्यादा महत्व देने को तैयार नहीं। राहुल ने इसका तोड़ यह निकाला था कि उन्होंने अपने प्रति वफादार नई लीडरशिप तैयार करनी

शुरू कर दी। अलग-अलग राज्यों में पार्टी की कमान उन्होंने अपने वफादार लोगों को दी, लेकिन चुनाव आते-आते हर फैसला पलटना पड़ा। पंजाब में कैप्टन अमरेंद्र सिंह की जगह बाजवा को खड़ा करना चाहते थे, लेकिन कैप्टन ने पार्टी छोड़ने की धमकी दे डाली और जमीनी रिपोर्ट भी मिली कि कैप्टन के पार्टी छोड़ने के बाद बाजवा में चनाव जीतने की कैपिसिटी नहीं है तो राहल को फैसला पलटना पड़ा। कैप्टन ने कांग्रेस को चुनाव भी जिता दिया। हरियाणा में भी यही देखने को मिला। हड्डा के मुकाबले राहुल अशोक तंवर को स्थापित करना चाहते थे। हुड्डा के पार्टी छोड़ने की धमकी के बाद अशोक तंवर को प्रदेश अध्यक्ष पद से हटाना पड़ा और हुड्डा के नेतृत्व में चुनाव लड़ने का फैसला हुआ। हुड्डा ने अपनी ताकत दिखा दी। कहा जा रहा है कि अगर हुड्डा की लीडरशिप को पहले कबूल कर लिया गया होता तो बहुत मुमिकन था कि हरियाणा में कांग्रेस की सरकार बन जाती। महाराष्ट्र में भी पार्टी के बेहतर प्रदर्शन की वजह राहुल के खास संजय निरुपम की विदाई को ही बताया जा रहा है। ऐसे में अब 'टीम राहुल' को अपने अच्छे दिन के लिए लंबा इंतजार करना पड़ सकता है।

### बदला चुकाने की बारी

यूपीए-2 में मनमोहन सरकार में स्टील मंत्री हुआ करते थे-बेनीप्रसाद वर्मा, जो अपने विवादित बयानों के चलते पूरे पांच साल मीडिया की सुर्खियों में बने रहे। 2009 में उन्होंने अमर सिंह से खट-पट के बाद समाजवादी पार्टी से कांग्रेस में एंट्री मारी थी। कांग्रेस में उनकी अपने होम डिस्ट्रिक्ट से सांसद पीएल पुनिया से कभी नहीं पटी और कांग्रेस के सत्ता से हटने के बाद जब उन्हें लगा कि पार्टी के अंदर उनके मकाबले पनिया को ज्यादा तवज्जो



मिल रही है तो उन्होंने समाजवादी पार्टी में वापसी करना बेहतर समझा। एसपी ने उन्हें राज्यसभा भेज दिया। उसके बाद से वह पुनिया से बदला निकालने का कोई मौका नहीं छोड़ते हैं। सियासी गलियारों में इस वक्त वह इसलिए चर्चा में हैं कि यूपी के विधानसभा उपचुनाव में उन्होंने पीएल पुनिया

के बेटे को हरवाने में मुख्य भूमिका निभाई। समाजवादी पार्टी में उन्होंने अखिलेश यादव से कहकर अपनी पसंद का उम्मीदवार लिया और फिर उसे जिताने में अपनी पूरी ताकत लगा दी। पीएल पुनिया इस वक्त कांग्रेस वर्कर्स के भी निशाने पर हैं क्योंकि हर चुनाव में वह अपने बेटे को ही टिकट दिलवाते हैं, लेकिन उनका बेटा आज तक एक भी चुनाव नहीं जीत पाया है।

### रीडर्स मेल 🤛 www.edit.nbt.in

जनता को चाहिए काम 26 अक्टूबर का संपादकीय 'छिपे हुए संकेत' पढ़ा। भले ही हरियाणा और महाराष्ट्र दोनों प्रदेशों में बीजेपी की अन्य दलों के साथ मिलकर एक बार फिर सरकार बन जाए, पर इसमें कोई दो राय नहीं कि इन चुनाव परिणामों ने सभी राजनीतिक दलों को भविष्य के चुनावों के लिए चेताने का काम किया है। वोटर जागरूक हैं। केवल खोखले नारों से या किसी विशेष चेहरे पर वह अब प्रभावित नहीं होने वाली। क्षेत्रीय समस्याओं से जनता को निजात दिलाने के लिए खास तौर पर रोजी-रोटी-मकान जैसी समस्याओं पर

काम करना ही होगा, भले ही सरकार किसी भी राजनीतिक दल की हो। विपक्षी दलों को भी इन मुद्दों के लिए आवाज उठानी होगी। राम प्रकाश शर्मा, वसुंधरा

■ दो बच्चों की नीति

असम की सर्बानंद सोनोवाल सरकार ने जनसंख्या नियंत्रण के लिए जैसा कदम उठाया है, वह विवाद को जन्म दे सकता है। इस नीति के अनुसार दो से अधिक बच्चों वाले माता-पिता को सरकारी नौकरी नहीं मिलेगी। इससे दो बातें सामने आती हैं। जनसंख्या नियंत्रण के लिए यह अच्छी पहल हो सकती है, पर गहराई से विचार

किया जाए तो यह एक गंभीर समस्या पैदा करने वाली नीति भी बन सकती है। इससे माता-पिता में पहले बच्चे के तौर पर लड़के की इच्छा और बढ़ जाएगी। इससे न केवल लिंग चयन को बढावा मिलेगा बल्कि गर्भपात के मामलों में भी इजाफा होगा। रूमा सिंह, ईमेल से

 सख्त कदम उठाएं 2014 से अब तक बीजेपी की जीत का रेकॉर्ड तो बहुत हो गया। अब मोदी सरकार को भ्रष्टाचारियों के खिलाफ कदम उठाने होंगे, काले धन का खुलासा करना होगा, बेनामी संपत्ति रखने वालों पर कठोर कार्रवाई करनी होगी और मजदर, किसान, दलित गरीब व व्यापारी वर्ग के हित में काम करना होगा। भ्रष्ट नेता अब भी मस्त

घूम रहे हैं। उनके खिलाफ जल्द कोई सख्त कदम नहीं उठाए गए तो जनता की सोच बदलने में समय नहीं लगेगा। जो हाल कांग्रेस का हुआ, वही बीजेपी का भी हो सकता है। साधूराम चतुर्वेदी, ईमेल से

nbteditpage@gmail.com पर अपनी राय नाम-पते के साथ मेल करें।

## अंतिम पत्र

वे भी तो आग की परवाह नहीं करते! बृजेश माथुर

\_\_\_\_\_ वर्ष 73, संख्या 257 आर.एन.आई, नं. 510/57© सर्वाधिकार सूर्यकात तिरिवेश अनुमति के वित्ता अंतुमं या आँतिक प्रमुक्कालन पूर्णक संविधिकार अविधान स्वताधिकारी वेनदे, आंत्रीम एक अन्यानि तिर्मिट के विद्या गर्वाधा याद्या , ग्वाबाद्दाशाल जलर मार्ग, न्वाबाद्दाशाल जलर मार्ग, न्वाबाद्दाशाल जलर मार्ग, न्वाबादाशाल जलर मार्ग, न्वाबादाशाल व्यावधान कर्य 40.7 विवाधीन के कावादा यो, नियास हर्यकार क्राविकार क्षा पार्टिक स्वताधान क्षा प्रमुक्त स्वताधान स्वत

# Join @NewspapersToday



हर महान कार्य पहले असंभव नजर आता है

# कुचला गया आतंक का फन

दुनिया के सबसे खूंखार और वहशी आतंकी संगठन इस्लामिक स्टेट के सरगना अबू बकर अल बगदादी को सीरिया में मार गिराया जाना एक बड़ी कामयाबी है। चूंकि इस घिनौने आतंकी सरगना को मार गिराने की घोषणा खुद अमेरिकी राष्ट्रपति ने की इसलिए इसके प्रति सुनिश्चित हुआ जा सकता है कि इस बार उसके मारे जाने की सूचना सही है। यह कुछ वैसी ही कामयाबी है जैसी अल-कायदा सरगना ओसामा बिन लादेन को खत्म करके हासिल की गई थी। हालांकि इन दोनों आतंकियों को मार गिराने में तब सफलता मिली जब उनके संगठनों की कमर तोड़ी जा चुकी थी, लेकिन इसके बाद भी उनका खात्मा आवश्यक था। चूंकि इन दोनों आतंकियों ने अमेरिका को सीधी चुनौती दी इसलिए उसने उन्हें घेर कर मारा। कहना कठिन है कि बगदादी के खात्मे से अमेरिकी राष्ट्रपति ट्रंप को घरेलू स्तर पर वैसी राजनीतिक सफलता मिलेगी या नहीं जैसी ओबामा को लादेन के अंत से मिली थी, लेकिन इसकी अनदेखी नहीं की जा सकती कि जेहादी आतंकवाद अभी भी दुनिया के तमाम हिस्सों में अपना सिर उठाए है और फिर भी अमेरिका उससे लड़ने के प्रति प्रतिबद्ध नहीं दिखता।

पश्चिम एशिया, अफ्रीका के साथ एशिया के अनेक हिस्सों में किस्म-किस्म के आतंकी संगठन अभी भी रक्त-पात करने में लगे हुए हैं। चिंता की बात यह है कि इनमें से कुछ न केवल भारत के पड़ोस में सक्रिय हैं, बल्कि उन्हें पाकिस्तान की ओर से हर तरह का संरक्षण भी मिल रहा है। इससे भी बड़ी चिंता की बात यह है जैश और लश्कर सरीखे पाकिस्तान आधारित जो आतंकी संगठन भारत पर निगाह लगाए हुए हैं उनके रिश्ते अफगानिस्तान में खुन बहा रहे तालिबान से हैं। यह कोई शुभ संकेत नहीं कि अभी हाल तक अमेरिका तालिबान से समझौता करने को लालायित था। अमेरिका और तालिबान के बीच फिर से बातचीत शुरू होने के आसार अभी भी हैं। अमेरिका के खैये ने तालिबान को तो बेलगाम किया ही है, उसके संरक्षक पाकिस्तान को भी बल प्रदान किया है। इससे बड़ी विडंबना और कोई नहीं सकती कि अफगानिस्तान में करीब-करीब हर दिन आतंकी धमाके कर रहे तालिबान के सरगना बीते दिनों पाकिस्तान के मेहमान बने। भारत आतंकियों की इस मेहमाननवाजी की अनदेखी नहीं कर सकता और उसे करना भी नहीं चाहिए, क्योंकि कश्मीर में जेहादी आतंक का दमन अभी भी शेष है। भारत और साथ ही दुनिया के अन्य देश इसकी भी अनदेखी नहीं कर सकते कि जेहादी आतंकवाद जिस विचारधारा की उपज है वह पहले की तरह फल-फूल रही है। बगदादी का खात्मा राहतकारी तो है, लेकिन यह ध्यान रखा जाए तो बेहतर कि आतंक की विष बेल को जड़

# वेतनमान की पहल

झारखंड सरकार ने समग्र शिक्षा अभियान के तहत कार्यरत 63 हजार पारा शिक्षकों को वेतनमान देने की दिशा में कदम आगे बढ़ाया है। इसके लिए पारा शिक्षक नियोजन सह सेवा शर्त नियमावली का ड्राफ्ट तैयार कर लिया गया है। सबसे बड़ी बात यह है कि पारा शिक्षकों पर यह थोपा नहीं जा रहा है। इस पर पारा शिक्षकों से प्रतिक्रिया और सलाह मांगी गई है। अब पारा शिक्षकों को भी चाहिए कि वे इस पर समय पर अपना सुझाव दें, ताकि नियमावली को लागू करने के लिए अन्य आवश्यक तैयारियां पूरी की जा सकें। पारा शिक्षकों के वेतनमान एवं सेवा शर्त नियमावली को लेकर स्थाई समाधान जरूरी है। उम्मीद है कि पारा शिक्षक भी इसे स्वीकार करेंगे तथा इसमें आंशिक और जरूरी सुधार को लेकर ही अपना परामर्श देंगे।

प्रस्तावित नियमावली के तहत वेतनमान प्राप्त करने के लिए पारा शिक्षकों को आकलन परीक्षा उत्तीर्ण करनी होगी। पारा शिक्षकों को इस परीक्षा से नहीं डरना चाहिए। सबसे बडी बात यह है कि इस प्रस्तावित नियमावली में पारा शिक्षकों को कई सुविधाएं देने का भी प्रावधान किया गया है। इसम सरकारा कामया की तरह महंगाई भत्ता तथा प्रत्येक वर्ष तीन

पारा शिक्षकों को चाहिए कि वे ऐसी मांगों पर न अड़ें, जो असंभव हो और जो कोर्ट में जाकर फंस जाए

फीसद वेतन वृद्धि जैसी सुविधाएं भी शामिल हैं। महिला पारा शिक्षकों को भी कई जरूरी सुविधाएं दी गई हैं। यह भी नहीं भूलना चाहिए कि राज्य सरकार ने पहले ही पारा शिक्षकों को कई ऐसी सुविधाएं प्रदान की हैं, जो कि दूसरे राज्यों के पारा शिक्षकों को प्राप्त नहीं है। प्राथमिक शिक्षकों की नियुक्ति में 50 फीसद पद पारा शिक्षकों के लिए आरक्षित होना सबसे बड़ा लाभ है। इसका लाभ उठाते हुए बड़ी संख्या में पारा शिक्षक पहले ही स्थाई शिक्षक बन चके हैं। ऐसे में पारा शिक्षकों को भी चाहिए कि वे भी ऐसी मांगों पर न अड़ें, जो असंभव हो। ऐसी कोई नियमावली नहीं बने, जो बाद में कोर्ट में जाकर फंस जाए। पारा शिक्षकों को बच्चों की शिक्षा पर भी ध्यान देना होगा। उम्मीद है कि इस नियमावली के लागू होने से पारा शिक्षकों की बार-बार होने वाली हड़ताल का समाधान निकलेगा। अब कुछ ही माह में राज्य में विधानसभा के चुनाव होने हैं। भाजपा की सरकार उससे पहले यह विवाद सुलझाना चाहेगी ताकि चुनाव में उसे कोई नुकसान न हो। पारा शिक्षकों को भी इस मौके का लाभ उठाना चाहिए और एक संतुलित समाधान निकालने में भागीदार बनना चाहिए।

# बगदादी के खात्मे के बाद भी चुनौती कायम



थॉमस एल फ्रीडमैन

आतंक का पर्याय बने आइएस सरगना अल बगदादी की मौत यकीनन अच्छी बात है, लेकिन इसके साथ ही सभी मुश्किलों का हल निकलने नहीं जा रहा है

धुनिक युग के सबसे पाशविक उन्नि धुनिक थुन क सबस पाराविक चेहरों में से एक अल बगदादी का मारा जाना पूरी दुनिया के लिए एक राहत भरी खबर है। उसने पश्चिम एशिया में इस्लामी चरमपंथी मुहिम के जरिये क्रुरता का तांडव मचाया। सीरिया में अमेरिकी कमांडरों के हाथों बगदादी की मौत से अब यह आतंकी मुहिम कुछ कमजोर पड़ेगी। इसके साथ ही उन तमाम महिलाओं को इंसाफ मिला जिनके साथ आइएस के आतंकियों ने दुष्कर्म किए, उन पत्रकारों के परिवारों के कलेजों को ठंडक पहुंचेगी जिनके सिर इन आतंकियों ने बड़ी बेदर्दी से कलम किए। उसकी मौत उन तमाम सीरियाई एवं इराकियों के लिए किसी सौगात से कम नहीं जो उसके आतंक से त्रस्त थे। जहां तक पश्चिम एशिया का सवाल है तो वहां आइएस का उभार उससे पहले आतंक के पर्याय बने ओसामा बिना लादेन की मौत के बाद शुरू हुआ था। बगदादी की मौत यकीनन अच्छी बात है, लेकिन इसके साथ ही सभी मुश्किलों का हल नहीं निकलने वाला। ट्रंप ने जिस तरह ओबामा प्रशासन के दौरान लादेन के खात्मे के महत्व को कम करके आंका और अपने प्रशासन में बगदादी की मौत पर वह जिस कदर अपनी पीठ थपथपा रहे हैं उससे यही मालूम पड़ता है कि इस क्षेत्र को लेकर उनकी जानकारी का स्तर कितना कमजोर है।

2014 में आइएस के उभार में तीन धड़ों की अहम भूमिका रही। इनमें एक धड़ा तो विदेशी लड़ाकों का था। इनमें से कुछ कट्टर जिहादी जरूर थे, लेकिन अधिकांश ऐसे नाकाम, निराश-हताश युवा थे जिनके जीवन में न तो कभी कोई महिला रही, न नौकरी और न ही कोई रुतबा। इस सबको हासिल करने के लिए वे आइएस में शामिल हो गए। आइएस ने ये सब उपलब्ध भी कराया। उसने यौन दासियां उपलब्ध कराईं। ये उन पुरुषों के लिए बड़ी बात थी जो संकीर्ण समाज एवं संस्कृतियों से ताल्लुक रखते थे।

आइएस का दूसरा धड़ा सुन्नी बाथ सेना के पूर्व अधिकारियों और स्थानीय इराकी सुन्नियों एवं जनजातियों से मिलकर बना था। ये इस आतंकी संगठन के दिमाग और उसके सैन्य तंत्र की रीढ़ बने। इराक की आबादी में एक तिहाई संख्या सुन्नियों की है। उन्होंने कई पीढ़ियों से इराक पर राज किया है। इराकी सेना में तमाम अधिकारी अमेरिकी दखल के बाद बने उस ढांचे से अपमानित, कुंठित और नाखुश थे जिसने शासन की बागडोर बहसंख्यक शियों के हाथ में सौंप दी थी। आइएस को आम इराकी सुन्नियों से भी अप्रत्यक्ष समर्थन मिला जो बुश प्रशासन के समर्थन से प्रधानमंत्री बने नूरी अल मलिकी के शासन में खुद को हाशिये पर महसूस कर रहे थे। उस दौर में तमाम सुन्नी इलाकों के लिए आइएस ईरान समर्थित शिया नेतृत्व वाली सरकार की तुलना में कम बुरा था, क्योंकि उसमें वे पक्षपात के शिकार हो रहे थे। अगर आप गूगल पर खोजेंगे तो मालूम



पड़ेगा कि इराक में प्रताड़ना के दौर की शुरुआत आइएस ने नहीं की थी।

सौभाग्य से अमेरिकियों और इराकियों ने मिलकर उस सरकार से पीछा छुड़ा लिया और अब इराक में कहीं बेहतर सरकार है। मगर अमेरिका पश्चिम एशिया में लगातार परानी गलतियां कर रहा है। वह धार्मिक विचारधारा की ताकत को हद से ज्यादा और अक्षम सरकार के प्रभावों को कहीं कम करके आंक रहा है।

आइएस का तीसरा धड़ा कट्टर वैचारिक लोगों से बना था जिसकी अगुआई खुद अल बगदादी करता था। इस धडे ने इस्लाम का अपना एक अलग ही प्रारूप बना लिया था। इस पर ध्यान देना होगा, क्योंकि यह बिंदु हमें वापस ट्रंप की विदेश नीति पर ले आता है। वह इस तथ्य से आंखें मूंदे हुए हैं कि मिस्र के राष्ट्रपति अब्दुल फतेह अल सीसी की सरपरस्ती में वहां की किसी जेल में अगला अल बगदादी तैयार हो रहा होगा। ट्रंप सीसी को एक बार 'अपना प्रिय तानाशाह' भी बता चुके हैं। सीसी के शासन में न केवल हिंसक जिहादियों को पूरी

शह मिल रही है, बल्कि पत्रकारों, कार्यकर्ताओं और नेताओं का निर्ममता से दमन भी किया जा रहा है। उनका कसूर सिर्फ इतना है कि वे अपने देश के भविष्य निर्माण में भूमिका निभाना चाहते हैं ताकि वे अपनी समस्त संभावनाओं को भुना पाएं और उन्हें आइएस जैसे किसी आसरे की तलाश न करनी पड़े। जब ट्रंप बगदादी को अपना सबसे बडा शिकार और अल-सीसी को सबसे प्रिय तानाशाह बताते हैं तो यह उनकी

दिशाहीनता को ही दर्शाता है। सीरियाई सुन्नियों ने उन्हीं वजहों से आइएस का समर्थन किया जिन कारणों से इराकी सुन्नियों ने उसकी मदद की। ईरान और उसके समर्थन वाला शिया दस्ता-हिजबुल्ला, शिया शासक बशर अल असद सरकार और रूस मिलकर सीरिया में ईरान समर्थित शिया सरकार बनाने में जुटे हैं। स्वाभाविक है कि इन सबने बगदादी को मारने के लिए ट्रंप को खुली छूट दी। बगदादी की मौत के साथ ही उनके लिए सीरियाई सत्ता पर पकड़ मजबूत करना और आसान हो जाएगा। इसमें वे सुन्नियों को सत्ता

बने रहेंगे तब तक वहां स्थायित्व की उम्मीद करना बेमानी होगा।

आज ट्रंप शेखी बघारने में लगे हैं कि वह कैसे सीरिया में तेल कुओं को महफूज बनाने में लगे हैं ताकि अमेरिकी कंपनियां उनका दोहन कर सकें। उन्होंने यहां तक डींग हांकी कि इराक से सभी तेल क्षेत्र ले लेने चाहिए यह बहुत ही बेहूदा बात है जो भविष्य में संकट को आमंत्रण देगी। अगर आज पश्चिम एशिया में अमेरिका के लिए कोई भूमिका है तो वह तेल क्षेत्रों को सुरक्षित बनाने की नहीं, बल्कि वहां लोकतांत्रिक प्रक्रिया को बढ़ावा देने की है। इराकी एवं सीरियाई कुर्दिस्तान, जॉर्डन यूएई, ओमान, लेबनॉन, ट्यूनीशिया का अस्थिर लोकतंत्र और बगदाद इसकी प्रतीक्षा में हैं। इनमें से कोई भी विकसित लोकतंत्र नहीं है। ओमान, जॉर्डन और यूएई में राजशाही है, लेकिन पश्चिम एशिया के लिहाज से यही कहा जाएगा कि जरूरी नहीं कि वहां सब कुछ आदर्श प्रारूप में हो।

इन देशों को इस्लाम के और आधुनिक प्रारूप एवं धार्मिक सिहण्णता को बढावा देने महिलाओं के सशक्तीकरण और आधुनिक शिक्षा की दिशा में आगे बढ़ने के लिए प्रेरित करना होगा। ये सभी जरूरी कवायद तो हैं लेकिन आइएस की प्रभावी काट नहीं। फिर भी इन्हें बढ़ावा देना श्रेयस्कर होगा, क्योंकि ये लोगो में अच्छे दिनों की आस जगा सकते हैं। आप लेबनॉन में युवाओं द्वारा लोकतंत्र के लिए किए जा रहे आंदोलन से समझ सकते हैं कि युवा क्या चाहते हैं? ट्रंप को यह समझना होगा कि आइएस को हराने, तेल के कुओं की हिफाजत करने और अपने प्रिय तानाशाह को बचाने से ही उनके कर्तव्य की इतिश्री नहीं होने वाली।

> (पुलित्जर पुरस्कार विजेता पत्रकार द न्यूयॉर्क टाइम्स के स्तंभकार हैं) response@jagran.com

# भारतीय दृष्टि वाला इतिहास

•तीत व्यतीत नहीं होता। वर्तमान भारत अतीत के पूर्वजों के सचेत एवं अचेत कर्मो का परिणाम हैं। अतीत और आधुनिक की सामूहिक स्मृति राष्ट्रबोध है। राष्ट्रबोध का मूलाधार इतिहासबोध है। इतिहास बोध राष्ट्र जीवन की उमंग पर प्रभाव डालता है। इतिहास में भूत के साथ अनुभूत भी होता है। अनुभूत में जय-पराजय, हर्ष-विषाद और प्रसाद के अनुभव होते हैं। गर्व करने लायक प्रेरक प्रसंग होते हैं। अनुभव सिद्ध होने के कारण इसका एक भाग अकरणीय होता है, एक भाग करणीय होता है और बड़ा भाग अनुकरणीय होता है। इतिहास में अनुभूत सत्य, शिव और सुंदर की अनुभूति संस्कृति है। रामायण, महाभारत व पुराण इतिहास है। वैदिक साहित्य प्राचीन भारतीय शैली के इतिहास हैं। पराधीन भारत में साम्राज्यवादी हितों को लेकर भारतीय इतिहास का विरुपण हुआ। भारत को सदा पराजित देश बताया गया। हमारे नायकों की छवि धूमिल की गई। केंद्रीय गृहमंत्री अमित शाह ने भारतीय इतिहास के पुनर्लेखन की जरूरत पर उचित ही बल दिया है।

यूरोपीय इतिहासकारों ने भारत पर अंग्रेजीराज का औचित्य सही सिद्ध करने के लिए इतिहास को विरुपित किया। अलबरूनी का आरोप था कि हिंदू अपना इतिहास भी नहीं संजो पाए। यूरोपीय इतिहासकारों और उनसे प्रभावित भारतीय इतिहासकारों ने भारत को पिछड़ा आत्महीन देश बताया। आर्यों के आक्रमण का मनगढंत इतिहास रचा। फिर मोहम्मद बिना कासिम से लेकर तमाम विदेशी हमलावरों की विजय गाथा का तानाबाना बुना गया। उनके विवरण में केरल के मार्तंड वर्मा, बंगाल के भास्कर बर्मन आदि के पराक्रम नहीं हैं। उत्तर प्रदेश में बहराइच के राजा सुहेलदेव ने महमूद गजनी के साले सैयद गाजी को हराया था। इतिहास में यह वीरता भी नदारद है। छत्रपति शिवाजी की राष्ट्रभिक्त और पराक्रम की भी उपेक्षा है। इसमें ईस्ट इंडिया कंपनी और अंग्रेजी सत्ता तक भारत की पराजय गाथा ही है। 1857 का स्वाधीनता संग्राम उनके लिए सिपाही विद्रोह है। सावरकर ने तथ्यों के साथ इसे प्रथम स्वाधीनता संग्राम बताया। अंग्रेजी मानसिकता के इतिहास लेखन में 1920 से लेकर 1946 तक महान सेनानियों की उपेक्षा है।

इतिहास लेखन का आधार सत्य तथ्य होता है, पर यह निरुद्देश्य नहीं होता। इतिहास का उद्देश्य राष्ट्र का संवर्धन होता है। यूरोपीय विद्वानों ने अंग्रेजी साम्राज्य के हित में सत्य का गला घोंटा। भारत के वामपंथियों ने अपनी विचारधारा



कर्म का पोस्टमार्टम जरूरी हो गया है



के पक्ष में इतिहास का विरुपण किया। इस विवरण में भारत का मल अतीत नहीं है। भारतीय महानायकों की उपेक्षा है। भारतीय इतिहास के पुनर्लेखन की आवश्यकता पुरानी है। वास्तविक इतिहास बोध से अलग रहने वाली भारतीय सत्ता के दौरान भी यह मांग कई दफा उठी है। वामपंथी इस मांग को भगवाकरण से जोड़कर हल्ला मचाते रहे हैं। अर्थशास्त्री संजीव सान्याल ने भी इतिहास के पुनर्लेखन की मांग की थी। अब अमित शाह ने पूरे तथ्यों के साथ इस मांग को उठाया है। प्रख्यात लेखक विलियम डेलरिंपल ने शाह की मांग का समर्थन किया है। सो अंग्रेजी सत्ता, संस्कृति, सभ्यता व वामपंथ को समर्थन देने वाले इतिहास कर्म का पोस्टमार्टम जरूरी हो गया है।

इतिहास और हिस्ट्री एक नहीं है। गांधी जी ने हिस्ट्री को युद्ध और हिंसा से भरपूर बताया था। हिस्ट्री के अनुसार भारत अंग्रेजी राज के पूर्व राष्ट्र नहीं था। गांधी जी ने इसका भी खंडन किया। इतिहास हिस्ट्री का अनुवाद नहीं है। इतिहास का अर्थ है-ऐसा ही हुआ था। इसकी जानकारी के तमाम उपयोग हैं। इतिहास गलती के दोहराव से रोकता है। शेक्सपियर के एक नाटक में राजा हेनरी पंचम युद्ध में जाता है। आर्च विशप उसे प्रेरित करते हैं, 'अपने महान शक्तिशाली पूर्वजों को देखो।' अंग्रेज अपनी भाषा, संस्कृति और पूर्वजों की वीरता के इतिहास बोध

से सजग रहे हैं। हम भारतीय अपने इतिहास में पूर्वजों के पौरुष पराक्रम के अंश खोजते ही रह जाते हैं। हम अंग्रेजी वामपंथी इतिहासकारों से प्राप्त इतिहास पर निर्भर हैं, जो हमें प्रेरित नहीं करता।

पराजित मानसिकता के परिणाम भयावह होते हैं। गौरवपूर्ण इतिहासबोध ऐसी मानसिकता से छुटकारा दिलाता है। बंकिम चंद्र चटर्जी ने ठीक लिखा था, 'इतिहास से हमें ज्ञात होता है कि पराधीनता के परिणाम में पराधीन जाति की बौद्धिक रचनाशीलता समाप्त हो जाती है।' अंग्रेजी राज के दौरान भी बेशक ऐसा बहुत कम हुआ, पर ज्यादातर बौद्धिक अंग्रेजी राज व विद्वानों के प्रभाव में आए। अंग्रेजी विद्वानों का बड़ा हिस्सा भारत को अशिक्षित और पिछड़ा बता रहा था। तमाम भारतीय विद्वान अंग्रेजों को भारत का भाग्य निर्माता मान रहे थे। भारतीय इतिहास लेखन की एक धारा इसी की पिछलग्गू बनी। ऐसे भारतीय इतिहास लेखकों ने यूरोप और भारत के मध्यकाल को एक इकाई माना। दोनों के मध्यकाल अलग-अलग हैं। तब यूरोप में लाखों महिलाएं डायन बताकर मारी गई थीं। भारत में तब दक्षिण से उत्तर तक भक्ति वेदांत का प्रवाह था. लेकिन वामपंथियों ने भिक्तकाल को वंचितों की प्रतिक्रिया बताया। ऐसा इतिहास भारतीयों में आत्महीनता का भाव भरता रहा है। भारत को विरुपित इतिहास से मुक्त और

असल इतिहासबोध से युक्त करने का वक्त आ गया है। भारत ने विदेशी प्रभुत्व के खिलाफ लगातार युद्ध किए हैं, पर अरबों को विजेता कहा जाता है। बंकिम चंद्र ने लिखा है, 'अरब एक प्रकार से दिग्विजयी रहे हैं। उन्होंने जहां आक्रमण किए, वहां जीते, पर फ्रांस व भारत से पराजित होकर लौटे। हजरत मोहम्मद के बाद छह वर्ष के भीतर उन्होंने मिस्न व सीरिया, 10 वर्ष में ईरान फिर अफ्रीका, स्पेन, काबुल व तुर्किस्तान पर अधिकार किया, पर भारत को नहीं जीत सके।' बंकिम के विवेचन में भारत का गौरवबोध है। यूरोपीय विद्वान अपने देशों के इतिहास संरक्षण में सजग हैं। उन्होंने संसदीय व्यवस्था में राजा-रानी को भी महत्व दिया है, पर भारतीय इतिहास विवेचन में वे पक्षपाती हैं। वामपंथी इतिहास विवेचन भारत के प्रति क्रूर है। ऐसा इतिहास भारत को भारत की प्रकृति, संस्कृति व वास्तविक नियति के लिए प्रेरित नहीं करता। इतिहास के पुनरावलोकन पर उच्चस्तरीय बहस बढ़ी है। विश्वास है कि बात दर तक जाएगी ही।

> (लेखक उत्तर प्रदेश विधानसभा के अध्यक्ष हैं) response@jagran.com



#### आलोचना

आलोचना मनुष्य के जीवन और व्यवहार का एक अभिन्न गुण है। इसके कारण ही मनुष्य अपने जीवन में सही-गलत चीजों को परखने और सीखने की प्रवृत्ति को निरंतर बनाए रखने में सफल होता है। दुनिया में महान से महान व्यक्तियों की आलोचना हुई है। उससे प्राप्त सीख को उन्होंने अपने जीवन में आत्मसात किया है, लेकिन हर एक व्यक्ति आलोचनाओं से नहीं सीख सकता है। आलोचना भी अलग-अलग प्रकार की होर्त है। यह रचनात्मक हो सकती है या फिर नकारात्मक जब हम आलोचना की बात करते हैं तो अक्सर हमारे जेहन में नकारात्मक भाव पैदा होता है और हम बचाव की मुद्रा में आ जाते हैं, पर यह स्थिति हमेशा अच्छी नहीं होती। हमें प्रतिक्रिया के पहले आलोचना के स्वरूप को समझना आवश्यक हो जाता है।

नकारात्मक आलोचना हमेशा अज्ञानता या फिर ईर्ष्या से जुड़ी हुई होती है जो स्वाभिमान को ठेस पहुंचाने, नीचा दिखाने या फिर आत्मविश्वास को कम करने के मकसद से की जाती है। इससे व्यक्ति को धैर्यपूर्वक समझदारी दिखाते हुए अनसुना कर देना चाहिए, क्योंकि जिस पेड़ पर अधिक फल लगते हैं उसी पेड़ पर सबसे अधिक पत्थर भी मारे जाते हैं। वहीं दूसरी ओर सकारात्मक या रचनात्मक आलोचना व्यक्ति को सहयोग करने के मकसद से की जाती है। यह आलोचना सीमित दायरे में व्यक्ति के स्वाभिमान को ठेस पहुंचाए बगैर उसकी गलतियों, नाकामियों और कमियों को सुधारने के लिए सुझाव के रूप में होती है, जो एक प्रेरक का भी कार्य करती है। इस आलोचना से प्राप्त प्रेरणा से व्यक्ति के अंदर सकारात्मक भाव उत्पन्न होता है जो आत्मविश्वास को प्रबल करता है। इससे व्यक्ति के अंदर हीनभावना आत्मविश्वास और कार्यक्षमता में गिरावट नहीं आती।

रचनात्मक आलोचना में इरादों पर आलोचना के बजाय कार्य और कार्यशैली की आलोचना होती है और ऊंचे स्वाभिमान वाला व्यक्ति हमेशा नकारात्मक आलोचना को नजरअंदाज कर रचनात्मक आलोचना को स्वीकार कर सीखता है।

शिवांशु राय

# सामाजिक बदलाव और आरटीआइ

गत दिनों केंद्रीय सूचना आयोग के 14वें स्थापना दिवस के अवसर पर गृह मंत्री अमित शाह ने कहा कि लोकतंत्र की यात्रा में सूचना का अधिकार कानून मील का पत्थर साबित हुआ है और शासन में पारदर्शिता तथा जवाबदेही को आगे बढ़ाने में आरटीआइ कानून ने बहुत बड़ी सहायता की है। दरअसल आरटीआइ कानून भारतीय लोकतंत्र की एक बड़ी उपलब्धि रही है। देश में आरटीआइ लाने का उद्देश्य पारदर्शी शासन व्यवस्था, भ्रष्टाचार मुक्त समाज तथा परिपक्व लोकतंत्र की स्थापना करना था। यह कानून अपने मकसद में बहुत हद तक कामयाब भी रहा है।

भारत दुनिया के उन चुनिंदा देशों में शामिल है, जहां नागरिकों को सूचना तक पहुंच की आजादी दी गई है। सूचना का अधिकार कानून सबसे पहले 1766 में स्वीडन में लागू किया गया था। अभी दुनिया के 80 से भी अधिक देशों में यह कानून प्रचलित है। भारत में इसकी शुरुआत 12 अक्टूबर, 2005 को हुई। यह कानून ब्रिटिश हुकूमत के दौरान देश में लागू किए गए शासकीय गुप्त बात अधिनियम-1923

शासन में पारदर्शिता तथा जवाबदेही को आगे बढ़ाने में आरटीआइ कानून ने बहुत बड़ी सहायता की है

को करारा जवाब था, जिसके तहत सरकार को किसी भी सूचना को गोपनीय रखने का अधिकार प्राप्त था। सूचना का अधिकार कानून का लागू होना अपने आप में ऐतिहासिक और क्रांतिकारी कदम था। आरटीआइ कानून ने पारदर्शिता और विश्वसनीयता जैसे मोर्चे पर लोकतंत्र की जड़ें मजबूत की है तथा सरकार और जनता के बीच सेतु का भी काम किया है। इसके जरिए एक आम आदमी भी सरकारी तथा गैर-सरकारी विभाग से जानकारी को घर बैठे प्राप्त कर सकता है। नियमतः आवेदक को एक महीने के अंदर सूचना दी जाती है और उससे सूचना मांगने का कारण तक नहीं पूछा जाता! आरटीआइ अपने आप में विशिष्ट और अनोखा कानून है।

हालांकि देश में आरटीआइ कानून के इस्तेमाल को लेकर 'एमनेस्टी इंटरनेशनल

इंडिया' द्वारा हाल ही में जारी की गई रिपोर्ट निराश करती है, जिसके मुताबिक देश में अब तक केवल ढाई फीसद लोगों ने ही इस कानून का इस्तेमाल किया है! महाराष्ट्र, कर्नाटक, केरल और गुजरात में इस कानून का बेधड़क इस्तेमाल हुआ है, जबिक मणिपुर, सिक्किम, मिजोरम और मेघालय जैसे राज्य इस मामले में फिसड्डी रहे हैं। आरटीआइ कानून के प्रति अरुचि की प्रमुख वजहों में इस कानून को लेकर लोगों में जानकारी एवं जागरूकता का अभाव, प्रदत्त सूचना में देरी या अधूरी एवं भ्रामक जानकारी का मिलना, अपील की झंझट तथा आरटीआइ कार्यकर्ताओं पर किए जाने वाले हमले प्रमुख रूप से शामिल हैं। आरटीआइ की बदौलत ना सिर्फ शहरी, बल्कि बड़ी संख्या में ग्रामीणों ने भी कई उपयोगी जानकारियां प्राप्त की हैं। आरटीआइ कानून सामाजिक बदलाव का वाहक बन कर उभरा है। इस कानून का जितना अधिक इस्तेमाल होगा, शासन उतना ही पारदर्शी और जवाबदेह बनेगा। एक जागरूक नागरिक के तौर पर इस कानून का प्रयोग समय-समय पर करते रहना बेहद जरूरी है। यह कानून हमारी ताकत है। (लेखक स्वतंत्र टिप्पणीकार हैं)

### मन का दीप जलाएं

अंधकार को चुनौती देने वाला उत्सव शीर्षक से लिखे अपने लेख में शिक्षाविद् गिरीश्वर मिश्र ने प्रकाश पर्व दीपावली की महत्ता को रेखांकित करते हुए मन-मस्तिष्क के तमस को दूर करने की जो बात की है, उससे असहमत नहीं हुआ जा सकता। वस्तुतः आज भौतिकता की चकाचौंध में सांस्कृतिक पर्वों की अर्थवत्ता विलुप्त होती जा रही है। भारत की लोक संस्कृति में दीप प्रज्वलन को शुभ माना जाता है। प्रत्येक शुभ अवसर पर दीप जलाकर मंगल कामना की जाती है। इन अर्थों में प्रकाशित दीपक न केवल अंधेरे को मिटाता है, अपितु स्वयं जलकर दूसरे को प्रकाशित करने का लोक कल्याणकारी संदेश भी देता है। दीप पर्व दीपावली भी भौतिक जगत को लोक कल्याण का यही सार्थक संदेश देता है कि मनुष्य मात्र को मन का दीप जलाकर अपने अंदर की कलुषता को मिटाने का यत्न करना चाहिए, लेकिन सांसारिक वासनाओं में आकंठ डूबा मनुष्य-मन अपने लिए अनेक प्रकार की भौतिक सुख-सुविधाओं को जुटाने में इस कदर व्यस्त है कि वह दीप पर्व पर प्रज्वलित दीपक के आध्यात्मिक भाव को समझने की चेष्टा ही नहीं करता या ऐसा करना वह जरूरी नहीं मानता। ये दोनों ही स्थितियां मनुष्य को उस अंधेरे से बाहर निकलने का अवसर नहीं देतीं, जिससे निकलना उसके मानवीय अस्तित्व के लिए आवश्यक है। आज मानव समाज के बीच जितनी भी विसंगतियां पनप रही हैं उनके मूल में मनुष्य-मन की कलुषता ही है, जिसे मिटाने की जरूरत है। कदाचित यही मन का दीप जलाना है, जिसे इस दीप पर्व के शुभ अवसर पर संकल्पबद्धता के साथ जलाने में ही जीवन की सार्थकता है। बाहर के कृत्रिम उजाले की चकाचौंध में भटकने की अपेक्षा मन के तमस को महसूस कर उसे मिटाने की जरूरत

### मेलबाक्स

है। धरा पर असंख्य दीये जलाकर यदि मन का दीप नहीं जलाया तो कैसा दीपोत्सव? इसलिए अपने अंदर के अंधेरे को मिटाने के लिए मन का दीप जलाएं, इसी में प्रकाश पर्व दीपावली की सार्थकता निहित है।

pandeyvp1960@gmail.com

#### इंदिरा गांधी की राजनीति

दैनिक जागरण के 27 अक्टूबर के अंक में संजय गुप्त का लेख, सबक सिखाने वाले चुनाव नतीजे, पढ़ा। इसमें प्रांतीय चुनावों में राष्ट्रीय मुद्दों पर जोर देने के खतरों के प्रति आगाह किया है। कांग्रेस पार्टी दो चुनाव (1972 का विधानसभा चुनाव और 1984 का लोकसभा चुनाव) इसी प्रकार अवांछनीय मुद्दों पर जोर देकर जीती थी। हां, उसने टाइमिंग का बड़ा ख्याल रखा था और विपक्ष बड़े दिल वाला था। 1971 का युद्ध जीतकर इंदिराजी ने उस विजय को विधानसभा चुनाव में भुनाने के लिए उनको दो मास पहले खिसका लिया, मार्च के स्थान पर जनवरी में ही करा लिए। युद्धोपरांत एक माह का समय प्रचार के लिए मिला। इंदिरा गांधी ने तमाम प्रचार माध्यमों में खुद को एक अजेय महिला, दुर्गा के अवतार के रूप में प्रचारित किया। विपक्ष ने दुर्गावतार के प्रचार पर आंखें बंद रखीं। कांग्रेस ने 16 में से 14 प्रांत में भारी बहुमत से जीत दर्ज की। केवल तमिलनाडु और केरल में असर नहीं पड़ा। अटलजी आदि विपक्षी खामोश रहकर चोटें सहते रहे। 1984 में इंदिरा की हत्या के बाद सहानुभूति का लाभ मिला। हाल के चुनाव में भाजपा ने भी ऐसा प्रयोग किया, लेकिन वह बहुत सफल नहीं रहा। amittalmrt2@gmail.com

## देवी लाल के असली वारिस

यह लोगों का जनसमर्थन ही है जिसने 10 महीने पुरानी पार्टी जजपा की झोली में 10 सीटें डाल दीं। अपने चाचा अभय चौटाला और दादा ओमप्रकाश चौटाला से बगावत करके इनेलो छोड़ने वाले दुष्यंत चौटाला ने 18 प्रतिशत वोट हासिल करके यह सिद्ध कर दिया है कि वे ही ताऊ देवीलाल के असली वारिस हैं और भविष्य में हरियाणा की किसान और जाट राजनीति के वही नेता होंगे।

यतेंद्र सिंह पूनिया, नई दिल्ली

#### नाबालिगों के अपराध

दिल्ली में लूट, हत्या, झपटमारी जैसी वारदातें आम हो गई हैं और प्रतिदिन इसमें इजाफा ही होता जा रहा है। इसमें नाबालिग बच्चों की संलिप्तता अधिक है। उम्र कम होने के कारण और अधिक पैसे कमाने के लोभ में ये बच्चे अपराध की तरफ बढ़ रहे हैं। नाबालिंग होने के कारण इनको सजा भी कम मिलती है जिससे इनके हौसले बढ़ जाते हैं। इन अपराधियों के लिए किसी सख्त कानून की आवश्यकता है राजन तिवारी, बदरपुर, नई दिल्ली

इस स्तंभ में किसी भी विषय पर राय व्यक्त करने अथवा दैनिक जागरण के राष्ट्रीय संस्करण पर प्रतिक्रिया व्यक्त करने के लिए पाठकगण सादर आमंत्रित हैं। आप हमें पत्र भेजने के साथ ई-मेल भी कर सकते हैं। अपने पत्र इस पते पर भेजें :

दैनिक जागरण, राष्ट्रीय संस्करण, डी-210-211, सेक्टर-63, नोएडा ई-मेल: mailbox@jagran.com

# बिज़नेस स्टैंडर्ड वर्ष 12 अंक 216

## खपत की चिंता

समीक्षा से यह संकेत मिलता है कि भले ही कॉर्पोरेट कर दर में कटौती से मुनाफे को गति मिली हो लेकिन मंदी का सिलसिला जारी है। न्यूनतम 10 करोड़ रुपये से अधिक कारोबार वाली 316 कंपनियों ने अब तक अपनी बिक्री के आंकडे जारी किए हैं। इनमें कई अग्रणी कंपनियां शामिल हैं। इन कंपनियों

दुसरी तिमाही के अब तक आए नतीजों की की बात करें तो अन्य आय समेत इनकी बिक्री और कुल राजस्व तीन वर्ष की न्यूनतम गति से बढा। इनकी बिक्री जलाई-सितंबर 2018 तिमाही की तुलना में 4 फीसदी की गति से बढ़ी जबिक कुल राजस्व 6.86 फीसदी की गति से बढा। कुल 9.66 लाख करोड रुपये के राजस्व वाले प्रादर्श के लिए यह आंकडा

व्यय में इजाफा 3.2 फीसदी की सालाना दर की अपेक्षाकृत धीमी गति से हुआ है। शायद ऐसा वैश्विक जिंस और ईंधन कीमतों में गिरावट की बदौलत हुआ है। करों में सालाना आधार पर 2.4 फीसदी की गिरावट आई है जो बताती है कि कर कटौती ने फायदा पहुंचाया है। कम लागत से मार्जिन सुधरा और परिचालन मुनाफा बढ़कर 14.6 फीसदी हो गया है जबिक कर पश्चात मुनाफा बढकर 14.7 फीसदी तक पहुंचा है। बहरहाल अप्रत्याशित मदों के समायोजन के पश्चात कर पश्चात मुनाफा गिरकर 6.75 फीसदी रह गया। ये तमाम अनुपात सितंबर 2018 बनाम सितंबर 2017 की तुलना में काफी कम थे। उस वक्त इसी समूह के लिए कर पश्चात लाभ 22 फीसदी जबिक कुल राजस्व 28

फीसदी की दर से बढ़ा था।

इस नमुने के नतीजों पर रिलायंस इंडस्ट्रीज, तीन बड़ी सूचना प्रौद्योगिकी कंपनियों-टीसीएस, इन्फोसिस और विप्रो तथा निजी बैंकों के विसंगतिपूर्ण योगदान की भी छाया है। वित्तीय क्षेत्र से परे और रिलायंस इंडस्ट्रीज को हटाकर देखें तो राजस्व 3 फीसदी से भी कम दर से बढा है। यह इस बात का संकेत है कि खपत की मांग कमजोर है। जाहिर है अगर खपत में तेजी से सुधार नहीं हुआ तो आय पर कर कटौती का सकारात्मक प्रभाव नदारद हो जाएगा। क्षेत्रवार बात करें तो कुछ नतीजे चिकत करने वाले और कुछ नकारात्मक भी हैं। सुचना प्रौद्योगिकी क्षेत्र की बिक्री और मुनाफा छह तिमाही में सबसे नीचे रहा। इस क्षेत्र की बड़ी कंपनियों ने चेतावनी जारी की

है कि मंदी के कारण इन सेवाओं की वैश्विक मांग घट रही है।

वाहन क्षेत्र की जिन बड़ी कंपनियों ने नतीजे घोषित किए उनमें केवल बजाज ऑटो के मुनाफे में अच्छा सुधार हुआ है जबकि तमाम कंपनियों की बिक्री कम हुई है। हालांकि टाटा मोटर्स ने अपना घाटा कम किया है। वहीं मांग के एक अन्य वाहक घरेलू उपभोक्ता वस्तु क्षेत्र की राजस्व वृद्धि घटी और यह 5.6 फीसदी रही। जबिक इसका मुनाफा 19.2 फीसदी रहा।

फार्मा क्षेत्र की कई महत्त्वपूर्ण कंपनियों ने अब तक नतीजे जारी नहीं किए हैं लेकिन कुल मिलाकर इस क्षेत्र का प्रदर्शन अच्छा है और यहां राजस्व में 11 फीसदी और समायोजित शद्ध लाभ में 23.9 फीसदी की बढ़ोतरी देखने को मिली। निजी बैंकों के साथ-साथ अब तक नतीजे घोषित करने वाले इकलौती सरकारी बैंक भारतीय स्टेट बैंक में भी सुधार आया है। हालांकि गैर बैंकिंग वित्तीय कंपनियों के ऊपर तनाव साफ नजर आ रहा है।

बैंकिंग और ईंधन के क्षेत्र में जब तक बडी सरकारी कंपनियां अपने नतीजे घोषित नहीं करती हैं तब तक रुझान का आकलन कर पाना मुश्किल होगा। बहरहाल, अन्य क्षेत्रों की बात करें तो मांग में कमी अब लगातार छठी तिमाही में प्रवेश कर रही है। कॉर्पोरेट कर ने मुनाफे वाली कंपनियों की आय में सुधार हुआ है लेकिन इसका असर मांग पर नहीं पड़ा है। देश की अर्थव्यवस्था में नई जान फंकने के लिए और अधिक केंद्रित नीतिगत कदम उठाने होंगे।



# राजनीतिक बयार में आ रहा है बदलाव

मोदी की लोकप्रियता में कमी नहीं आई है लेकिन अधिकांश लोग अब उन दिक्कतों की ओर लौट रहे हैं जो उन्हें परेशान कर रही हैं। लोग अब आर्थिक मोर्चे पर बेहतरी चाहते हैं।

सं वर्ष मॉनसून सामान्य से लंबा खिंचा। बहरहाल अब हवा अपना रुख बदल रही है। शुष्कं हवाएं आने लगी हैं। ये पंजाब और हरियाणा में जल रहे फसल अवशेष का धुआं साथ ला रही हैं। शरद ऋतु का आगमन हो

इतने स्पष्ट ढंग से नहीं लेकिन राजनीतिक हवाओं में भी बदलाव आया है। बीते कुछ वर्षों से अर्थव्यवस्था में ठहराव है लेकिन भारतीय जनता पार्टी (भाजपा) ने चरम राष्ट्रवाद और धर्म के मिश्रण को बढावा देना जारी रखा। आम चुनाव के आसपास बालाकोट और अभिनंदन प्रकरण के वक्त यह चरम पर पहुंच गया।

मतदाताओं को यह यकीन दिलाया गया कि बीते सात दशकों से पाकिस्तान देश के अस्तित्व के लिए खतरा बना हुआ है लेकिन किसी ने इस बारे में कुछ नहीं दिया, अब मोदी इस समस्या से निर्णायक ढंग से निपट रहे हैं। वह ऐसा निर्णायक, निर्भय और प्रतिकारक सैन्य कार्रवाई के साथ कर रहे हैं और विश्व स्तर पर भारत का कद ऊंचा कर पाकिस्तान को अलग-थलग कर रहे हैं। एक बार जब ज्यादा लोग इस पर यकीन करने लगें तो वे अपनी पारंपरिक राजनीतिक प्रतिबद्धताएं भूल जाते हैं।

बाकी काम खुद ब खुद होता है। पाकिस्तान मुस्लिम मुल्क है। वह जिहाद के नाम पर आतंक फैलाता है। खुन के प्यासे जिहादी पूरी दुनिया के लिए समस्या हैं। एक बार फिर जोर इसी बात पर कि खतरा इस्लाम से है, भारतीय मुस्लिम भी इससे अछूते नहीं हैं और हिंदुओं को एकजुट होना होगा। जाहिर सी बात है कि यह सब इतना कारगर नहीं होता अगर कल्याण योजनाओं में गरीबों को 12 लाख करोड़ रुपये नहीं दिए गए होते। घरेलू गैस, शौचालय, घर और मुद्रा ऋण आदि इसके उदाहरण हैं। मैंने चुनाव प्रचार के दिनों में इस बारे में अक्सर

चुनावी दृष्टि से राष्ट्रवाद, धर्म और लोक कल्याण का मिश्रण घातक होता है। विपक्ष ने राफेल का जिक्र छेडा उसका मजाक उडा। नोटबंदी के बाद वृद्धि दर में गिरावट और बेरोजगारी आदि के मुद्दे की अनदेखी हुई। पिछले दिनों दो

विधानसभा चुनावों के नतीजों ने हवा का रुख बदलने का संकेत दे दिया है। हालांकि नरेंद्र मोदी की लोकप्रियता में कोई कमी नहीं आई है। यदि ऐसा होता तो भाजपा कम से कम हरियाणा में हार जाती।

राष्ट्र की बात

शेखर गुप्ता

केवल उनकी बदौलत ही हरियाणा में पार्टी को इतने मत मिले। हालांकि पांच महीने पहले हुए लोकसभा चुनाव के 58 फीसदी मतों की तुलना में वे घटकर 36.5 फीसदी रह गए। परंतु ये मत इतने तो थे कि मोदी ने मतगणना की शाम दोहरी जीत की घोषणा की।

हाल के दिनों में सबसे प्रतिष्ठित रहे इंडिया टुडे-ऐक्सिस सर्वे से इसके कुछ संकेत मिलते हैं। हरियाणा में उसने बताया कि भाजपा को कांग्रेस पर 9 फीसदी की बढत हासिल है लेकिन ग्रामीण युवाओं, बेरोजगारी, किसान, कृषि श्रम आदि विषयों पर वह पिछड रही थी। उसे जरूरी शहरी मध्य वर्ग, उच्च जातियों और पंजाबी बहल आबादी ने शर्मिंदगी से बचाया।

इसी प्रकार महाराष्ट्र में जहां पार्टी ने लोकप्रिय और स्वच्छ छवि वाले मुखिया के नेतृत्व में बेहतर शासन किया वहां भी उसके प्रदर्शन में गिरावट आई। ऐसा तब हुआ जब कांग्रेस और राकांपा के कई प्रमुख नेता भाजपा में शामिल हो गए थे या सरकारी एजेंसियों के कोपभाजन थे।

अगर इन तमाम लाभों के बावजूद किसी तरह जीत हासिल हुई तो यह देखना होगा कि पार्टी का करिश्मा कैसे ट्टा ? यदि पश्चिमी महाराष्ट्र के ग्रामीण इलाकों में अपेक्षाकृत बड़ी पार्टी कांग्रेस

के स्थान पर राकांपा ने भाजपा की राह रोकी तो यह स्पष्ट है कि कई किसानों और बेरोजगारों ने पक्ष बदल लिया है।

याद रहे यह सब कश्मीर में अनुच्छेद 370 के खात्मे के 11 सप्ताह, हाउडी मोदी आयोजन, मोदी और डॉनल्ड ट्रंप की बातचीत और संयुक्त राष्ट्र महासभा में भाषण के पांच सप्ताह के भीतर हुआ है। इसमें कुछ और बातें जोड़ लें- मामल्लपुरम में शी चिनफिंग के साथ टीवी शो, पी चिदंबरम और डी के शिवकुमार की गिरफ्तारी और राकांपा नेता प्रफल्ल पटेल को आतंकियों को फंड देने के कथित मामले में इकबाल मिर्ची से जोड़ना आदि। इस बीच सर्वोच्च न्यायालय में अयोध्या मामले की सुनवाई लगभग रोजाना होती रही और यह मुद्दा देश में अहम हो चका था।

यदि इन कारकों के बावजूद महज पांच महीने में इतने सारे मतदाताओं ने दूरी बनाई तो यह इस बात का संकेत है कि राष्ट्रवाद की हवा, पाकिस्तान विरोध और धार्मिक उन्माद ने आर्थिक मसलों और रोजगार की जिन चिंताओं को ढक दिया था वे दोबारा सामने आ रहे हैं। मतदाता अब बुनियादी

मुद्दों की ओर लौट रहे हैं।

<sup>े</sup>आम चुनाव के प्रचार अभियान के दौरान हम अक्सर गरीब, बेरोजगार लोगों के पास पहंचते थे जो कहते कि वे दुखी हैं और हालात वादे के मुताबिक नहीं सुधरे हैं। इसके बावजूद उन्होंने मोदी के लिए मतदान करने की बात कही। क्यों: देश के लिए। वह भावना कम नहीं हुई है। इसे मतदाता की तरह देखें तो उसे लगता है कि मोदी को देश की रक्षा के लिए वोट देने की खातिर उसने अपनी तमाम निजी चुनौतियों को किनारे कर दिया है। देश सुरक्षित है अब आप बताइए कि आपने घटती आय, बढती बेरोजगारी और किसानों आदि के लिए क्या

मेरा मानना है कि धर्म के साथ जुड़े राष्ट्रवाद की हवा पर अब अर्थव्यवस्था में ठहराव, बेरोजगारी और आम नाराजगी हावी होने लगी है। पाकिस्तान के खिलाफ कदम, कश्मीर और आतंकवादी के खिलाफ शोर इन्हें दबा नहीं सकता, बशर्ते कि कोई बड़ी सैन्य कार्रवाई न हो जाए।

क्या राम मंदिर पर सर्वोच्च न्यायालय का अनुकूल निर्णय अंतर पैदा करेगा? शायद हिंदी प्रदेशों में कुछ हद तक ऐसा हो। लेकिन इतना पर्याप्त नहीं है क्योंकि अब लोगों की दिक्कतें बढ गई हैं। वे आर्थिक आशावाद की वापसी चाहते हैं।

हम देश में बार-बार चुनावों की बात करते हैं। भाजपा एक देश-एक चुनाव के विचार की समर्थक है लेकिन फिर भी मोदी सरकार महाराष्ट्र और हरियाणा के साथ झारखंड चनाव नहीं चाहती थी। शायद उसे संकट का आभास हो गया था। शायद उसे यह समझ में आ गया है कि उनके पास वोट जुटाने वाला एक ही नेता है और उसे तीनों राज्यों में पर्याप्त समय देने की

झारखंड चुनावों के बाद पता चल जाएगा कि इसका उलटा असर तो नहीं हो रहा है। यह अंदाजा ही लगाया जा सकता है कि उत्तर में हरियाणा और पश्चिम में महाराष्ट्र से चली बदलाव की हवाएं झारखंड पहुंचेंगी या नहीं इस बारे में तो केवल कयास ही लगाया जा सकता है। लेकिन यह तय है कि विपक्ष अब कड़ी मेहनत करेगा। परंतु ऐसे वक्त में जबकि सभी जीतों का श्रेय एक नेता को दिया जाता है, उसे हार की जवाबदेही से बचा पाना मश्किल है। खासतौर पर मौजदा दौर में जबिक हार नहीं बल्कि जीत के कम अंतर को भी निराशाजनक माना जा रहा है।

भारत में लगातार चलने वाले चनावों की एक अच्छी बात यह है कि राजनीति कभी ठहरती नहीं। झारखंड के बाद दिल्ली में चुनाव होंगे। भाजपा को तब यह निर्णय लेना होगा कि उसे मोदी को सामने रखना है या नहीं। क्योंकि तब लडाई मोदी बनाम केजरीवाल की हो जाएगी। क्या एक आधे राज्य के लिए इस तरह का दांव खेलना उचित होगा जबकि तमाम नगर निकायों, जमीन और पुलिस तक पर केंद्र का नियंत्रण है। मैं केवल यह कह सकता हूं कि दिल्ली में अरविंद केजरीवाल की तैयारी हरियाणा में कांग्रेस की तुलना में बहुत बेहतर है।

देश में राजनीति में बदलाव आने में लंबा वक्त लगता है। परंतु राजनीतिक मौसम बदलते रहते हैं। इसका अंदाजा आपको अभी लग रहा होगा।

# जब खुदरा कारोबार रूबरू हुआ मीडिया बाजार से **ऑनलाइन** खुदरा फ्लिपकार्ट ने हाल में एक वीडियो

स्ट्रीमिंग सेवा शुरू की। कंपनी 'बैंकबैंचर्स' नाम से पहली मूल (ओरिजिनल) सीरीज का प्रसारण इस महीने शुरू कर रही है। बॉलीवुड फिल्म निर्माता फरहा खान इसकी प्रस्तोता होंगी। इसमें वह भारत की शीर्ष हस्तियों के साथ बातचीत करेंगी। सिखया एंटरटेनमेंट के गुनीत मोंगा शॉर्ट स्टोरीज के क्रिएटर और क्यूरेटर के तौर पर इसमें शिरकत कर रहे हैं। फ्लिपकार्ट वीडियो पर आधी से अधिक सामग्री दूसरे और तीसरे दर्ज के शहरों से होंगी। कंपनी के एक प्रवक्ता ने कहा कि इसका मकसद ऐसे इंटरनेट उपभोक्ताओं को फ्लिपकार्ट से जोड़ना है, जो ऑनलाइन खरीदारी से बहत अधिक वाकिफ नहीं हैं। कंपनी की यह पहल कारणों से दिलचस्प हो जाती है।

करीब 16 करोड़ लोगों के घर पहुंचने वाली फ्लिपकार्ट में अमेरिका की 515 अरब डॉलर हैसियत वाली दिग्गज खुदरा कंपनी वॉलमार्ट की बहुलांश हिस्सेदारी है। अमेरिका की ही एक दूसरी कंपनी एमेजॉन ने 2007 में वीडियो सर्विस शुरू की थी, जिसे हम आज एमेजॉन प्राइम वीडियो के नाम से जानते हैं। 233 अरब डॉलर हैसियत वाली एमेजॉन दुनिया की सबसे बडी खुदरा कंपनियों में एक है। कंपनी ने 'द फैमिली मैन' या 'मार्वेलस मिसेज मैसल' जैसे कार्यक्रमों पर लाखों डॉलर खर्च किए हैं। एमेजॉन प्राइम वीडियो 2016 में भारत में आया। दुनिया की दो सबसे बड़ी ऑनलाइन और ऑफलाइन कंपनियों ने भारत में वीडियो स्टीमिंग कारोबार में अपनी खासी पैठ बना ली है।

एक दूसरी अहम बात यह है कि फ्लिपकार्ट से पहले ऑनलाइन ऑर्डर लेकर खान-पान की आपूर्ति करने वाली जोमैटो भी वीडियो सेवा में उतरी है। जोमैटो ने संजीव कपुर के साथ 'फुड ऐंड यू' और जॉर्डइंडियन के साथ 'ड्यूड व्हेअर इज द फूड' सहित कार्यक्रमों की पेशकश शरू की थी। इसके बाद जोमैटो ने पिछले वर्ष अगस्त में 'स्निक पीक' की भी शुरुआत की थी। ये कार्यक्रम केवल भारत में उपलब्ध होंगे. जहां जोमैटो 500 शहरों में कारोबार करती है। बाकी वीडियो का प्रसारण उन सभी 24 देशों के



मीडिया मंत्र

वनिता कोहली-खांडेकर

सात करोड़ लोगों तक हो सकता है, जहां कंपनी का कारोबार है। जोमैटो की इस पहल का मकसद अधिक से अधिक लोगों तक पहुंचना और उन्हें कंपनी के साथ समय बिताने के लिए आकर्षित करना है। पिछले वर्ष ओला ने 'ओला प्ले' की सेवा देनी शुरू की थी। इसमें यात्री थोडी अतिरिक्त रकम खर्च कर कैब में वीडियो सर्विस का आनंद ले सकते हैं।

तीसरा कारण थोडा दिचलस्प और रुझान के विपरीत है। गैर-मीडिया क्षेत्र की कंपनियां ऐसे समय में वीडियो सर्विस में कदम रख रही हैं जब पूरी दुनिया में मीडिया कंपनियां सभी तरह की 'लेनदेन सेवाओं' में उतर रही हैं। ये सेवाएं प्रत्यक्ष ऑनलाइन खुदरा या ऐसी गतिविधियां हो सकती हैं. जो संभावित खरीदारों को उन वेबसाइटों तक ले जाती हैं. जहां वे खर्च करते हैं। इसके बदले इकाइयों को कमीशन या 'संबद्ध राजस्व' की प्राप्ति होती है। उदाहरण के तौर पर देश की सबसे बड़ी इंटरनेट पब्लिशर टाइम्स इंटरनेट अपने कुल राजस्व का एक तिहाई से थोड़ा अधिक हिस्सा ऐसी सेवाओं से प्राप्त करती है, जो हैं। डाइनआउट, ईटी मनी या ग्रेडअप ऐसे ही उदाहरण हैं। सवाल यह उठता है कि लाखों डॉलर रकम के निवेश से बनने वाली सामग्री के बाजार में फ्लिपकार्ट या जोमैटो के लिए क्या

भारत में अनुमानित ८,००० करोड़ रुपये के ऑनलाइन वीडियो मार्केट में करीब 60 करोड़ यूजर को लुभाने के लिए 35 से अधिक ऐप एक दूसरे से प्रतिस्पर्द्धा कर रहे हैं। ग्रेंगल का यूट्यूब इनमें सबसे बड़ा है, जो हरेक महीने 26.5 करोड़ लोगों तक पहुंचता है। वर्ष 2018 में इसका राजस्व

संभावनाएं दिख रही हैं।

2,000 करोड़ रुपये से अधिक रहा था। डिज्नी का हॉटस्टार, वॉयाकॉम18 का वूट और नेटफ्लिक्स सहित दूसरे भी अपनी बाजार हिस्सेदारी बढाने के लिए पूरी कसरत कर रहे हैं।

ये सभी नियमित मीडिया कंपनियां हैं, जो लाइसेंस वाली एवं मूल सामग्री के जरिये विज्ञापन या सबस्क्रिप्शन राजस्व अर्जित करती हैं। जोमैटो में वरिष्ठ उपाध्यक्ष (ग्रोथ) दुर्गा रघुनाथ कहते हैं, 'हम नेटफ्लिक्स या यूट्यूब बनने की होड़ में नहीं हैं। हम किसी खास विषय-वस्तु पर कार्यक्रम बनाते हैं, इसलिए हमारा बजट सीमित है। हमारा मकसद लोगों को बाहर जाकर खाने का आनंद उठाने या घर में ही खान-पान करने से जुड़े लेने में लोगों की मदद करना है। यह लेनदेन और एक पूरी फिल्म के बजाय बजाय सर्च आधारित वीडियो है।'

हालांकि वैश्विक स्तर पर

एमेजॉन को छोड़कर वीडियो कारोबार में हाथ आजमाने वाली गैर-मीडिया कंपनियों का प्रदर्शन अच्छा नहीं रहा है। वॉलमार्ट, मीडियामार्क्ट, कार्फू, सेंसबरीज दुनिया की कुछ उन बड़ी खुदरा कंपनियों में शामिल हैं, जिन्होंने वीडियो सेवा कारोबार में दांव आजमाया है। लंदन स्थित शोध एवं सलाहकार कंपनी ओवम में प्रिंसिपल एनालिस्ट ( पे-टीवी और ओटीटी वीडिया) टोनी गनारसन कहते हैं, 'इनमें ज्यादातर सेवाएं टीवीओडी (ट्रांजेक्शन वीडियो-ऑन-डिमांड) थीं और सफल नहीं रहीं थीं। कुछेक साल मशक्कत करने के बाद लगभग सभी बंद हो गईं।'

मीडिया कंपनियों के बारे में भी यह बात परी तरह लाग नहीं होती है। एनडीटीवी की सफल डिजिटल इकाई एनडीटीवी कन्वर्जेंस ने फैशन में विशेष खुदरा कारोबार पर हाथ आजमाया. लेकिन इसे बहुत अधिक सफलता नहीं मिली। टाइम्स इंटरनेट का ज्यादातर राजस्व 'द टाइम्स ऑफ इंडिया' या 'गाना' जैसे ब्रांड से आता है। कई दूसरी सेवाओं से कमीशन राजस्व भी बढ़ रहा है। फिलहाल स्थिति साफ नहीं लग रही है। मीडिया और गैर-मीडिया कंपनियों जब तक और प्रयोग सामने नहीं आ जाए तब तक एक स्पष्ट रुझान के लिए हमें इंतजार करना होगा।

हालांकि विशद्ध रूप से

## कानाफूसी

#### उद्यमी थिंक टैंक

विभिन्न राजनीतिक दलों से संबद्ध थिंक टैंक किस तरह तमाम क्षेत्रों के विशेषज्ञ लोगों से संपर्क साध सकते हैं इसका एक उदाहरण यह है कि नवंबर के प्रथम सप्ताह में राजीव गांधी समकालीन अध्ययन संस्थान सूक्ष्म, लघु एवं मझोले उद्यम (एमएसएमई) मंत्रालय के सचिव अरुण कुमार पांडा की मेजबानी करने जा रहा है। यह मेजबानी एक पुस्तक के लोकार्पण और परिचर्चा से जुड़ी है। पांडा स्टोरी ऑफ इंडिया एमएसएमई: डिस्पेयर टु डॉन ऑफ होप नामक किताब का लोकार्पण करेंगे जिसे लिखा है बी येराम राजू ने। ध्यान रहे कि राजू तेलंगाना इंडस्ट्रियल हेल्थ क्लीनिक के सलाहकार हैं। इस आयोजन के दौरान सामाजिक समता तक पहुंच से जुड़े विभिन्न मुद्दों को लेकर परिचर्चा का आयोजन भी किया जाएगा। परिचर्चा में तमाम अन्य लोगों के साथ राष्ट्रीय लघु उद्योग निगम के निदेशक पी उदयकुमार भी शिरकत करेंगे।

#### बदली तकदीर



केरल के मतदाताओं ने हाल में संपन्न पांच विधानसभा उपचनाव में सत्ताधारी डेमोक्ने टिक फ्रंट और (एलडीएफ) यूनाइटेड विपक्षी डेमोक्रे टिक फ्रंट (यूडीएफ) दोनों को प्रसन्न होने की वजह दी है। सत्ताधारी वाम मोर्चे को दो और शेष तीन सीटों पर यूडीएफ को जीत

मिली है। एलडीएफ ने दोनों सीटें कांग्रेस से छीनीं जबिक वह एर्णाकुलम जैसे कांग्रेस के गढ़ में हार का अंतर कम करने में कामयाब रहा। वहीं यूडीएफ ने अपनी दो सीटें बरकरार रखीं। अरूर में पार्टी प्रत्याशी शानिमुल उस्मान जीतने में कामयाब रहे। वह राज्य में कांग्रेस के इकलौते ऐसे प्रत्याशी हैं जिन्हें मई में हुए लोकसभा चुनाव में हार का सामना करना पड़ा था। भाजपा इकलौता ऐसा दल है जिसे मतदाताओं का साथ नहीं मिला। भाजपा के सबरीमला अभियान का नेतृत्व करने वाले के सुरेंद्रन को कोन्नी में हार का सामना करना पड़ा और वह तीसरे स्थान पर रहे।

## आपका पक्ष

#### सशक्त महिला सशक्त समाज

देश में वर्तमान परिदृश्य में

महिलाओं की आर्थिक, सामाजिक और राजनीतिक क्षेत्रों में भागीदारी पुरुषों की अपेक्षा कम है। वैश्विक आर्थिक मंच के ग्लोबल जेंडर गैप इंडेक्स 2018 की रिपोर्ट के अनुसार कुल 149 देशों में भारत को 108वां स्थान मिला है। वैश्विक आर्थिक मंच ने विभिन्न मापदंड जैसे महिलाओं की आर्थिक स्थिति, स्वास्थ्य, शिक्षा तथा राजनीति में पहुंच के आधार पर सूची जारी की थी। राजनीति में संख्या के अनुपात में महिलाओं की भागीदारी में कमी से महिला संबंधित विषयों को कम तरजीह दी जाती है। संसद में महिलाओं की संख्या केवल 14 प्रतिशत है। वर्ष 2014 की अपेक्षा 2019 के आम चुनाव में महिलाओं की संख्या में कुछ बढ़ोतरी हुई है लेकिन यह संतोषजनक नहीं है। देश में वर्ष 2011 की जनगणना के अनुसार महिला साक्षरता दर 64.46 प्रतिशत है जबिक पुरुष साक्षरता दर 82.14 प्रतिशत हैं। बिहार और



राजस्थान में महिला साक्षरता दर : हालांकि पिछले कुछ वर्षों में क्रमश: 51.50 प्रतिशत और 52.17 प्रतिशत है। इसलिए इन राज्यों में महिला शिक्षा पर विशेष ध्यान देने की आवश्यकता है, क्योंकि शिक्षित महिला एक बेहतर भविष्य का ! महिला सुरक्षा के कारण सेवा क्षेत्र निर्माण कर सकती हैं। कार्यबल की दर में कमी भी महिला सशक्तीकरण

की राह में बाधा है। समान कार्य के

बदले समान वेतन नहीं मिलना एवं

संसद में महिला सांसदों की संख्या में कुछ बढ़ोतरी हुई है

तथा उद्योग में महिलाओं की कमी देखी जा सकती है। महिलाओं से संबंधित अपराध भी बढ़ती जा रही है। राष्ट्रीय अपराध रिकॉर्ड ब्यूरो की रिपोर्ट के अनुसार वर्ष 2007 से 2016 के बीच महिला संबंधी अपराध में 83 प्रतिशत की बढ़ोतरी हुई है। महिलाओं को स्वास्थ्य संबंधित समस्याओं का भी सामना करना पड़ता है। सरकार को शिक्षा, स्वास्थ्य एवं राजनीति में अवसर की समानता के विषयों पर जोर देना होगा। सरकार महिला कल्याण के लिए पहल की है जिनमें बेटी बचाओ, बेटी पढ़ाओ योजना, पोषण अभियान, प्रधानमंत्री उज्ज्वला योजना, मातृ वंदना योजना आदि हैं। लेकिन इन योजनाओं की उचित क्रियान्वयन की जरूरत है। योगेश मिश्रा, जयपुर

#### संस्कृति बनाम अनैतिकता

आप जब किसी व्यक्ति से अच्छे व्यवहार की उम्मीद रखते हैं तो आपको भी सभी व्यक्तियों के साथ

पाठक अपनी राय हमें इस पते पर भेज सकते हैं : संपादक, बिजनेस स्टैंडर्ड लिमिटेड, 4, बहादुर शाह जफर मार्ग, नई दिल्ली - 110002. आप हमें ईमेल भी कर सकते हैं : lettershindi@bsmail.in उस जगह का उल्लेख अवश्य करें, जहां से आप ईमेल कर रहे हैं।

अच्छा व्यवहार करना होगा। हाल में शुरू हुई तेजस एक्सप्रेस ट्रेन से जुड़ी ऐसी खबरें सामने आईं जिनसे पता चला कि यात्रियों का व्यवहार सही नहीं था। तेजस एक्सप्रेस में काम करने वाली महिला परिचारिका के साथ ट्रेन में सफर करने वाले पुरुष यात्री अनैतिक व्यवहार करते हुए नजर आए। यात्री महिला परिचारिका से सलीके से पेश नहीं आ रहे थे। वेलकम ड्रिंक परोसते वक्त परिचारिका की इजाजत के बगैर यात्री सेल्फी लेते नजर आए। इसके अलावा यात्री सीट पर लगी कॉल बटन को बार-बार दबाकर परिचारिका को बेवजह परेशान करते आए। इस अनैतिक व्यवहार में अग्रणी कुछ यात्री तो परिचारिका से उनका मोबाइल नंबर तक मांगने लगे। ऐसा व्यवहार कर लोग तुच्छ मानसिकता का परिचय दे रहे हैं। ऐसे यात्रियों को समझना चाहिए कि उनके इस कृत्य से सिर्फ वही बदनाम नहीं हो रहे हैं बल्कि पूरी भारतीय संस्कृति प्रभावित हो रही है।

विजय महाजन प्रेमी, नई दिल्ली

# बगदादी का अंत

**अ**पने उद्भव के बाद कुछ ही समय में समूची दुनिया में खौफ और बर्बरता का पर्याय बन चुके संगठन इस्लामिक स्टेट ऑफ इराक एंड सीरिया यानी आइएसआइएस के सरगना अबू-बकर अल-बगदादी के मारे जाने की खबर को अंतरराष्ट्रीय राजनीति में एक बड़ी घटना के रूप में दर्ज किया जाएगा। यों इससे पहले भी कई बार उसके मारे जाने की खबरें आईं, लेकिन कुछ समय बाद वे निराधार साबित हुईं। लेकिन अमेरिकी सुरक्षा बल 'डेल्टा कमांडोज' के एक गोपनीय अभियान के बाद जिस तरह के तथ्य सामने आए हैं, उनसे यही लगता है कि इस बार दुनिया को बगदादी और उसके आतंक से मुक्ति मिली है। खबरों के मुताबिक सीरिया के इदलीब प्रांत के सुदूर गांव बारिशा में एक गुप्त ठिकाने का पता लगाने के बाद अमेरिकी सैनिकों ने अचानक हमला किया और बगदादी को घेर लिया। कोई विकल्प नहीं देख कर बगदादी ने कमर में बंधे विस्फोटक से खुद को उड़ा लिया। इस मसले पर खुद अमेरिकी राष्ट्रपति डोनाल्ड ट्रंप ने जिस तरह की घोषणा की, उससे यही लगता है कि इस बार बगदादी के खात्मे की खबर आखिरी है। इसके बावजूद यह मानना शायद जल्दबाजी होगा कि अल-बगदादी के खात्मे के साथ ही आइएस का समूचा तंत्र ही खत्म हो गया है।

गौरतलब है कि बगदादी के मारे जाने की खबरों के बाद यह जानकारी भी सामने आई कि आइएस ने अब अब्दुल्लाह कार्दश को अपना सरगना चुन लिया। सवाल है कि इसकी क्या गारंटी है कि अब्दुल्लाह कार्दश आने वाले वक्त में बगदादी जैसा ही आतंक नहीं पैदा करेगा! दरअसल, कार्दश ने काफी पहले से आइएस के कई मामलों को संभालना शुरू कर दिया था और सभी आतंकी हमलों को अंजाम देने में कार्दश की मुख्य भूमिका होती थी। यह छिपी बात नहीं है कि सीरिया और आसपास के देशों तक फैल चुकी लड़ाई में आइएस के खिलाफ अमेरिका, रूस, तुर्की सहित कई देशों के अलग-अलग या फिर संयुक्त अभियान के बावजूद पिछले कई सालों से इस संगठन ने अपनी मौजूदगी बनाए रखी है। आइएस ने दुनिया का ध्यान पहली बार तब खींचा था, जब उसने इराकी शहर मोसुल पर कब्जा कर लिया था और यहां तक कि सद्दाम हुसैन के गृह जनपद तिकरित को भी अपने झंडे के नीचे ले लिया था। माना जाता है कि कई देशों की सेनाओं के सामने टिके रहने के पीछे अल-बगदादी की नेतृत्व क्षमता थी। रूढ़िवादी और हिंसक इस्लामी आंदोलन में विश्वास रखने वाले बगदादी ने अपने कब्जे वाले इलाके में शरीयत के मुताबिक शासन चलाने की घोषणा कर दी थी। इसलिए उसके मारे जाने की खबर निश्चित रूप से आइएस के लिए बड़ा झटका साबित हो सकती है।

यह एक जटिल स्थिति है कि आइएस न केवल मैदानी जंग लड़ने वाला आतंकी संगठन है, बल्कि उसने अपने विचारों के प्रसार और दूसरे देशों के भोले-भाले युवाओं को अपनी चपेट में लेने की भी कोशिश की। यहां तक कि भारत में भी आइएस के एजेंटों ने युवाओं को आकर्षित करने का जाल रचा, लेकिन यहां के सामाजिक-राजनीतिक माहौल की वजह से वह नाकाम रहा। बहरहाल, बगदादी के मारे जाने की खबर ऐसे समय में आई है जब सीरिया में चल रही लंबी लड़ाई के बीच आइएस की जैसी प्रतिक्रिया सामने आने लगी थी, उससे साफ जाहिर था कि लड़ाई के मैदान में उसके पांव उखड़ रहे हैं और वह कमजोर पड़ चुका है। फिर भी इस आतंकी संगठन के कामकाज का जो तौर-तरीका रहा है, उसे देखते हुए सीरिया और उस समूचे इलाके में आइएस के खिलाफ मोर्चा लेने वाले देशों की सेनाओं को उसके समूचे अंत की रणनीति पर काम करना चाहिए।

# प्रदूषण की हवा

चिछले एक हफ्ते से लगातार खराब हो रही दिल्ली की हवा ने फिर से लोगों की नींद उड़ा दी है। ऐसा लग रहा है जैसे दिल्ली जहरीली गैस के चैंबर में तब्दील हो गई है। दीपावली के दो दिन पहले ही दिल्ली में वायु प्रदूषण खतरनाक स्तर पर पहुंच चुका था और चेतावनी जारी की गई थी कि अगले तीन-चार दिन में यह बेहद गंभीर रूप धारण कर लेगा। प्रदूषण से निपटने के लिए सरकार की ओर से कितने ही कदम क्यों न उठाए गए हों, लेकिन लग रहा है कि सब बेअसर साबित हो रहे हैं और वायु प्रदूषण भयावह रूप धारण करता जा रहा है। हवा की गुणवत्ता को लेकर केंद्रीय प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड (सीपीसीबी) रोजाना जो नए-नए आंकड़े जारी कर रहा है, वे चिंता को और बढ़ाने वाले हैं। कभी गाजियाबाद देश का सबसे प्रदूषित शहर बन रहा है तो कभी हरियाणा का हिसार। जाहिर है, दोनों राज्य पराली के धुएं की मार झेलने को विवश हैं। सोमवार को दिल्ली और आसपास के इलाकों में प्रदूषण सबसे ज्यादा रहने का बड़ा कारण पटाखों का धुआं भी रहा। हालांकि दावा किया जा रहा है कि हर साल के मुकाबले इस बार पटाखे कम चले, लेकिन हालात बता रहे हैं कि ज्यादा चलें या कम, हवा में जहरीले कणों की मात्रा कम नहीं हो रही है।

ं जैसे गंभीर हालात हैं, उसमें जल्द कोई राहत नहीं मिलने वाली। वायु गुणवत्ता और मौसम पूर्वानुमान एवं अनुसंधान प्रणाली (सफर) ने तो आने वाले कुछ दिनों के लिए चेतावनी जारी की है और बताया है कि सिर्फ तेज हवा चलने पर ही हवा में मौजूद घातक कणों से राहत मिल सकती है। सफर ने पहले बताया था कि पराली और पटाखों का धुआं मिल कर ज्यादा हालत खराब करेगा। सुप्रीम कोर्ट ने हालांकि पटाखे फोड़ने पर सख्ती तो की और सिर्फ दो घंटे के लिए केवल हरित पटाखे जलाने की अनुमति दी थी, लेकिन उसका ज्यादा असर नहीं दिखा। दरअसल, कानून के जरिए पटाखे जलाने पर रोक लगा पाना न तो संभव है, न ही व्यावहारिक। पारंपरिक पटाखे इस बार भी खुब बिके, इन पर रोक नहीं लग पाई। इसके लिए लोगों को ही जागरूक होना पड़ेगा और समझना होगा कि इतने गंभीर हालात के बाद भी अगर हम नहीं सुधरे तो आने वाले दिनों में सांस लेना तक मुश्किल हो जाएगा। कानून अपनी जगह है और उसे लागू किया भी जाना चाहिए, लेकिन इससे भी ज्यादा जरूरी लोगों को जागरूक बनाना है।

फिलहाल राहत इस बात की है कि पिछले तीन सालों के मुकाबले वायु प्रदूषण का स्तर इस बार कम रहा। लेकिन हकीकत यह है कि जितना प्रदूषण अभी है वह भी पहले जितना ही खतरनाक है। ऐसा भी नहीं है कि प्रदूषण सिर्फ पराली और पटाखे के धुएं से बढ़ रहा है, कूड़ा जलाने की समस्या इससे कहीं ज्यादा गंभीर है। हर जगह कूड़ों के निस्तारण का सबसे आसान समाधान उसे जलाने के रूप में ही देखा जाता है, इसीलिए जगह-जगह कूड़ा जलाया दिया जाता है। यह समस्या हर राज्य की है। राज्यों को निर्देश भी दिए गए हैं कि कूड़ा जलाने वालों के खिलाफ सख्त कार्रवाई हो, लेकिन सरकारें इस काम में घोर लापरवाह साबित हो रही हैं। जहां तक सवाल है पराली जलाने का, तो इसमें किसानों को रास्ता नहीं नहीं सूझ रहा है और सरकारें उन्हें इसका कोई विकल्प मुहैया नहीं करा पाई हैं। हालांकि पंजाब और हरियाणा में अब इस दिशा में पहल तो हुई है, पर बहुत छोटे स्तर पर। दिल्ली को धुएं से बचाने के लिए युद्धस्तर पर प्रयास किए जाने की जरूरत है।

# कल्पमेधा

बहुत-सी और बड़ी गलतियां किए बिना कोई बड़ा आदमी नहीं बन सकता। -ग्लेडस्टन

epaper.jansatta.com

# कुपोषण की चुनोती

जयंतीलाल भंडारी

कुपोषण और भूख की चुनौती से निपटने के लिए कुछ और रणनीतिक कदम उढाए जाने जरूरी हैं। सार्वजनिक वितरण प्रणाली में सुधार करने होंगे। इस वितरण प्रणाली के माध्यम से सुनिश्चित करना होगा कि कुपोषण और भूख का जोखिम झेल रहे बच्चों सहित सभी भारतीयों को संतुलित और पोषक आहार मिले और देश के भंडार गृहों में गेहूं और चावल का ढेर उपयुक्त रूप से वितरित होकर जरूरतमंद लोगों तक पहुंचे।

🔁 स समय जहां एक ओर भारत में गरीबी घटने की ₹वैश्विक रिपोर्टें राहत भरी दिखाई दे रही हैं, वहीं दूसरी ओर भूख और कुपोषण बढ़ने की रिपोर्टें चिंताएं पैदा करने वाली हैं। ऐसे में देश के करोड़ों लोगों की अपेक्षा है कि गरीबी की तरह भूख और कुपोषण में भी तेजी से कमी आए। हाल में विश्व बैंक ने एक रिपोर्ट में कहा है कि 1990 से 2018 के बीच भारत ने गरीबी से लड़ने में काफी काम किया है और इससे गरीबी दर में काफी सुधार आया है। तीन दशकों में गरीबी की दर आधी रह गई है। इसी तरह संयुक्त राष्ट्र ने एक सौ एक देशों के लिए गरीबी सूचकांक रिपोर्ट-2019 जारी की है। इस रिपोर्ट में कहा गया है कि इन एक सौ एक देशों में एक अरब तीस करोड लोग गरीब हैं। भारत ने 2006-2016 के बीच दस विकासशील देशों के समूह में सबसे तेजी से गरीबी कम की है और इन दस सालों में देश के सत्ताईस करोड़ लोग गरीबी रेखा से बाहर आए हैं। गरीबी सूचकांक रिपोर्ट के मुताबिक

भारत में गरीबों की संख्या 55.1 फीसद (चौंसठ करोड़) से घट कर 27.9 फीसद (छत्तीस करोड़ नब्बे लाख) रह गई है। सूचकांक के आठ पैमानों के आधार पर गरीबी की रेटिंग की गई है, जिनमें पोषण, शिशु मृत्यु दर, रसोई गैस की उपलब्धता, स्वच्छता, पेयजल उपलब्धता, बिजली की उपलब्धता, आवास की समस्या और संपत्तियों का अभाव जैसे पहल शामिल हैं। रिपोर्ट में कहा गया है कि भारत के कुल गरीबों में से करीब आधे गरीब यानी 19.6 करोड़ गरीब लोग देश के चार राज्यों बिहार, झारखंड, उत्तर प्रदेश और मध्यप्रदेश में रहते हैं।

हालांकि देश में गरीबी में कमी आती जा रही है, लेकिन बढ़ती हुई जनसंख्या भूख और कुपोषण की समस्या को और बढ़ाती जा रही है। यह गंभीर चिंता का विषय इसलिए है कि विकास के साथ-साथ कमजोर वर्ग को लाभान्वित करने की कई योजनाओं

के बाद भी भूख और कुपोषण की चुनौती दिखाई दे रही है। इसी महीने आई यूनिसेफ की रिपोर्ट 'द स्टेट ऑफ द वर्ल्ड्स चिल्ड्रन-2019' में कहा गया है कि भारत में पांच साल से कम उम्र के उनहत्तर फीसद बच्चों की मौत का कारण कुपोषण है। यूनिसेफ ने कहा है कि महज बयालीस फीसद बच्चों को समय पर खाना मिलता है। भारत में भूख की समस्या से संबंधित रिपोर्ट 15 अक्तूबर, 2019 को जारी हुई। इस साल के वैश्विक भूख सूचकांक (ग्लोबल हंगर इंडेक्स) में एक सौ सत्रह देशों की सूची में भारत सात पायदान और फिसल कर एक सौ दो वें स्थान पर आ गया। जबिक वर्ष 2010 में भारत पनच्यानबे वें स्थान पर था।

रिपोर्ट में भारत की रैंकिंग में गिरावट का एक बड़ा कारण यह बताया गया है कि पांच साल से वाले बच्चों की संख्या तेजी से बढ़ी है। साथ ही, भारत के छह से तेईस महीने तक के सभी बच्चों में से मात्र 9.6 फीसद बच्चों को न्यूनतम स्वीकार्य आहार मिल पाता है। यूनिसेफ की 'द स्टेट ऑफ द वल्ड्स् चिल्ड्न 2019' रिपोर्ट और वैश्विक भूख सूचकांक-2019 में भारत की बिगड़ती स्थिति का प्रमुख कारण बढ़ती जनसंख्या और बच्चों को समय पर पर्याप्त आहार नहीं मिल पाना है। नोबेल पुरस्कार से सम्मानित अर्थशास्त्री अमर्त्य सेन का भी कहना है कि भारत में भूख से पीड़ित लोगों और कृपोषण से ग्रस्त बच्चों की बढ़ती तादाद चिंताजनक है। बिहार, मध्यप्रदेश, ओडीशा, गुजरात, पश्चिम बंगाल, झारखंड और असम जैसे

राज्यों में यह समस्या लंबे समय से चिंताएं बढ़ाने वाली दिखाई देती रही है। जन्म के बाद बच्चों को जिन पोषक तत्त्वों और स्वास्थ्य सेवाओं की आवश्यकता होती है, वे बच्चों को मिल नहीं पाते हैं। स्थिति यह है कि न तो बच्चों का ढंग से टीकाकरण हो पाता है, न ही उनकी बीमारियों का समुचित इलाज।

देश में भूख और कुपोषण से निपटने के लिए विकास दर को ऊंचाई पर ले जाकर प्रतिव्यक्ति आय बढ़ाने के लिए अर्थव्यवस्था के तीनों क्षेत्रों- कृषि, उद्योग और सेवा क्षेत्र में ऊंचे लक्ष्यों की प्राप्ति पर ध्यान देने की जरूरत है। गरीबी से निपटने और प्रतिव्यक्ति आय बढ़ाने के लिए सबसे पहले कृषि क्षेत्र पर ध्यान देना होगा। अभी भी मानसून अर्थव्यवस्था को लेकर बड़ा पहलू बना बना हुआ है। यदि देश में अच्छी बारिश होती है तो सब कुछ ठीक रहता है और मौद्रिक नीति भी कारगर साबित होती है। लेकिन यदि



अच्छी बारिश नहीं होती है तो महंगाई, विकास दर कम उम्र के बच्चों में ऊंचाई के अनपात में कम वजन जैसी चिंताएं दिखाई देने लगती हैं। हालांकि वर्तमान में भारतीय कृषि राष्ट्रीय आय में केवल सत्रह फीसद का योगदान करती है, लेकिन कृषि पर देश की तिरपन फीसद आबादी का जीवन निर्भर है।

> देश में कुपोषण और भूख की समस्या से निपटने के लिए सरकार ने जो कदम उठाए हैं उन्हें तेज करने की जरूरत है। इसमें कोई दोमत नहीं है कि सरकार सामाजिक सुरक्षा की डगर पर तेजी से आगे बढ़ी है, जिससे देश के कमजोर वर्ग के करोड़ों लोग लाभान्वित हो सकेंगे। इसी तरह नई स्वास्थ्य नीति के तहत अब स्वास्थ्य पर सकल घरेलु उत्पाद (जीडीपी) का ढाई फीसद धन खर्च करने का लक्ष्य रखा गया है, जो अभी जीडीपी का 1.04 फीसद है। ऐसे में देश में स्वास्थ्य

का स्तर बढ़ेगा और लोगों की भूख और कुपोषण की पीड़ा कम होगी। किसानों को प्रतिवर्ष छह हजार रुपए वार्षिक दिए जाने की नई व्यवस्था से भी ग्रामीण क्षेत्रों में कुपोषण और भूख की समस्या से बहुत कुछ हद तक निजात मिलेगी। सरकार ने अपनी नीतियों को ग्रामीण भारत और गरीबों पर केंद्रित किया है, साथ ही जिस तरह श्रमिकों की न्यूनतम आय युक्त मजदूरी भी देशभर में एक समान सुनिश्चित कर दी है, उसका लाभ भी वंचित वर्ग को मिलेगा।

यह भी जरूरी है कि भूख, गरीबी और कुपोषण से निपटने के लिए हमें चीन की श्रम कौशल आधारित विकास रणनीति से सीख लेनी होगी, जिसके आधार पर देश के अधिकांश लोगों को रोजगार मुहैया कराया जा सकता है। एक ओर हमें शैक्षणिक दृष्टि से पीछे रहने वाले युवाओं को कौशल विकास से प्रशिक्षित करना होगा और उन्हें

> रोजगारोन्मुखी पाठ्यक्रमों से शिक्षित करना होगा। वहीं दूसरी ओर गांवों में काफी संख्या में जो गरीब, अशिक्षित और अर्धशिक्षित लोग हैं, उन्हें अर्थपूर्ण रोजगार देने के लिए निम्न तकनीक विनिर्माण में लगाना होगा।

> कुपोषण और भूख की चुनौती से निपटने के लिए कुछ और रणनीतिक कदम उठाए जाने जरूरी हैं। सार्वजनिक वितरण प्रणाली में सुधार करने होंगे। इस वितरण प्रणाली के माध्यम से सुनिश्चित करना होगा कि कुपोषण और भूख का जोखिम झेल रहे बच्चों सहित सभी भारतीयों को संतुलित और पोषक आहार मिले और देश के भंडार गृहों में गेहूं और चावल का ढेर उपयुक्त रूप से वितरित होकर जरूरतमंद लोगों तक पहुंचे। स्कूलों में बच्चों को सब्जियों एवं प्रोटीन से भरपूर खाना परोसने की व्यवस्था

सुनिश्चित करनी होगी। चूंकि देश में दूध का उत्पादन लगातार बढ़ रहा है और नवीनतम पशुगणना में दुधारू गायों की संख्या तेजी से बढ़ने के आंकड़े सामने आए हैं इसलिए बच्चों तक दूध की उपयुक्त पूर्ति और दुग्ध उत्पादों की पहुंच सुनिश्चित किए जाने से बच्चों को एनिमिया की चपेट से बचाया जा सकेगा। यूनिसेफ की रिपोर्ट और वैश्विक भूख सूचकांक के मद्देनजर सरकार कुपोषण और भुखमरी की हकीकत को सामने रखते हुए वर्ष 2019 में अर्थशास्त्र का नोबेल पुरस्कार पाने वाले दंपत्ति अभिजित बनर्जी और एस्टर डफ्लर के द्वारा गरीबों की कुपोषण और भूख की समस्याओं के समाधान के लिए प्रस्तृत किए गए नए अर्थशास्त्र को भी ध्यान में रखते हुए कारगर रणनीति बनाने और उस पर अमल करने की जरूरत है।

# हवा में जीवन

संगीता कुमारी

🔁 वा को हमने प्रकृति से मुफ्त में लिया है और कहते हैं कि जो वस्तु हमें बिना किसी मेहनत और कीमत के मिलती है, हम उसकी कद्र नहीं करते हैं। यही वजह है कि आज की हवा इस कदर प्रदुषित हो चुकी है और हवा को इस हालत में पहुंचाने में हमारी भूमिका बहुत ज्यादा है। जबिक हवा हमारे जीने का अहम साधन है। मुफ्त में मिली जिंदगी को जिस तरह हम फिजूल की बातों में बर्बाद कर देते हैं, वैसे ही शायद प्रकृति की ताजी हवा को भी जीवन के खिलाफ बनाने की कोशिश कर रहे हैं। क्या यह हमें तब समझ में आएगा, जब हमारी सांस रुकने लगेगी और शरीर थम जाएगा? दिन-रात की भागदौड़ से लेकर भविष्य की योजनाएं किसी काम नहीं आएंगी, अगर हम शुद्ध हवा में सांस लेने से वंचित हो गए।

किसी तरह से अर्जित की गई भौतिक चीजों का कई बार हम बहुत खयाल रखते हैं, क्योंकि वे यथादुष्टि हमें दिखती हैं। उनकी उपयोगिता को ध्यान में रखते हैं। जबिक नहीं दिखने वाली चीजों की कद्र नहीं करते। हालांकि सांस हमें नहीं दिखती है, लेकिन सच यह है कि यह हमारा जीवन है।

अगर हमारे भीतर इसकी कद्र होती तो हम विकास के नाम पर यों हवा को प्रदूषित नहीं होने देते! विकास के साथ-साथ वायु को प्रदूषित होने से बचाने के लिए भी हर मुमिकन इंतजाम करते। मगर ऐसा हमने नहीं किया है। हम अंधे विकास के पैरोकार बने रहे, इसमें अपना हर संभव सहयोग करते रहे, जगह-जगह फैक्ट्रियों को स्थापित करते गए, उनमें लगी चिमनियों से निकलने वाली जहरीली गैसों और धुएं को हवा में

शायद यह सोच कर कि इतना विशाल आकाश है, धुआं उड़ कर दूर निकल जाएगा। मगर यह भूल गए कि धुआं उड़ कर जाएगा तो कहीं से उड़ कर आएगा भी! अब स्थिति यहां तक पहुंच गई है कि हवा जहरीली बन रही है।

घुलने के लिए छोड़ दिया।

शहरों की आबोहवा का तो यह हाल है कि आंखों में जलन, सीने में घुटन को आसानी से महसूस किया जा सकता है। सर्दी का मौसम शुरू होते ही अस्पतालों में सांस के मरीजों की संख्या तेजी से बढ़ने लगती है। नवजात शिशुओं और वृद्ध लोगों के लिए खतरा बहुत ज्यादा बढ़ जाता है। सुबह की सैर करने वालों की सेहत क्या बनेगी? घर बैठ कर सैर नहीं कर पाने की वजह से हम प्रदूषण और सरकार को

कोसते रहते हैं। मगर यह भूल जाते हैं कि प्रदूषण को फैलाने वाली जगह पर काम करने के लिए उन्होंने कितनी माथापच्ची की थी, कितने पापड़ बेले थे। अपने गांव की खुली हवा को महत्त्व नहीं देते हुए उसे छोड़ कर शहरी बन बैठे। खेत खलिहान को 'बंटइया' पर देकर गांव भूल गए। अब जब पीछे मुड़ कर देखते हैं, तब पाते हैं कि गांव में खेतों में काम करने वाला मजदूर शहरी लोगों के मुकाबले ज्यादा स्वस्थ्य है। इसका

दुनिया मेरे आगे प्राकृतिक हवा है। अधिकतर शहरी लोग अपने आपको बीच मझधार में फंसा हुआ पाते हैं, क्योंकि वे शहर में लगे काम धंधे के कारण गांव वापस जा नहीं सकते और शहर की घुटन भरी हवा में एक स्वस्थ जीवन जी नहीं सकते!

सबसे अहम कारण शुद्ध

यों भी सितंबर से नवंबर के दौरान दिल्ली जैसे महानगरों में दुषित हवा का प्रकोप इतना ज्यादा बढ़ जाता है कि उसका असर त्योहारों पर भी पड़ता है। प्रदूषण कम करने के अनेक उपायों पर सरकारें पूरे वर्ष कोई खास कदम नहीं उठाती हैं। मगर त्योहारों के समय एक अभियान-सा चलने लगता है। प्रदूषण से बचाव के लिए अभियान चलाना जरूरी भी हो गया है, क्योंकि फुलझड़ी, अनार, चरखी से

उठने वाले धुएं प्रदुषण का स्तर काफी ज्यादा बढ़ा देते हैं। दमा, सांस के मरीजों को अस्पताल तक पहुंचा देते हैं। एक स्वस्थ व्यक्ति भी परेशानी महसूस करता है। मगर यह सोचना होगा कि ऐसे हालात क्यों पैदा हुए कि त्योहारों के सन्नाटे को चीरने वाले पटाखों पर रोक लगाने की आवश्यकता आ पड़ी? इस दिवाली पटाखे कम छोड़े जाने के बावजूद दिल्ली और दूसरे शहरों में प्रदुषण का स्तर इतना ऊंचा और चिंताजनक क्यों रहा?

घनी अमावस का घना अंधियारा बढ़ रहा है। अब नौबत यहां तक आ चुकी है कि पर्यावरणविदों की चेतावनियों और सरकारों की ओर से प्रदूषण के विरुद्ध अभियानों का मर्म सबको समझना होगा। सभी को हवा और सांस से चलने वाले जीवन के महत्त्व को समझना होगा और इसलिए रिवायती और औपचारिक चिंता जताने के बजाय पूरे साल वायु प्रदूषण को रोकने लिए उचित कदम उठाने की आवश्यकता है, ताकि वर्ष में एक दिन दीये के साथ अमावस्या के घने सन्नाटे को रौनक के साथ दूर किया जा सके। ज्यादा नहीं तो थोड़ा-सा ही सही, बच्चों के साथ-साथ बड़े भी जी को बहला सकें। यह तभी संभव है, जब हवा साफ हो, जो जीवन की सांस बन कर साथ रहे!

# सहयोग का मंच

🚬 जरबैजान की राजधानी बाकू में 18वें गुट **जा** निरपेक्ष आंदोलन का सम्मेलन आयोजित किया गया। द्वितीय विश्वयुद्ध की समाप्ति के बाद जब शीत युद्ध प्रारंभ हुआ और पुरा विश्व दो ध्रुवों में विभाजित हो गया था, तब इसी आंदोलन ने उपनिवेशवाद के चंगुल से मुक्त हुए नव स्वतंत्र देशों को अपनी स्वतंत्र विदेश नीति के संचालन के लिए मंच दिया था। भारत इस आंदोलन के अग्रणी देशों में से एक था। लेकिन शीत युद्ध की समाप्ति और सोवियत संघ के विघटन के बाद से ही इसकी प्रासंगिकता को लेकर सवाल उठते रहे हैं। हम शीत युद्ध के दौर में नहीं हैं लेकिन उदारीकरण और वैश्वीकरण के इस युग ने अलग तरह की चुनौतियां हमारे सामने खड़ी कर दी हैं। असमानता, पिछड़ापन, गरीबी, आतंकवाद, जलवायु परिवर्तन आदि कई ऐसे गंभीर मुद्दे हैं जिनका समाधान कोई भी देश अकेले नहीं कर सकता। इनसे जूझने के लिए देशों के बीच आपसी सहयोग और सामंजस्य की आवश्यकता पहले से और अधिक हो गई है और इन चुनौतियों के हल में गुट निरपेक्ष आंदोलन की प्रासंगिकता और भी प्रखर होने लगती है।

1990 के दशक के बाद से ही गुट निरपेक्ष आंदोलन ने स्वयं को पुनर्गठित करते हुए, अपना ध्यान राजनीतिक मुद्दों की तुलना में आर्थिक मुद्दों की ओर केंद्रित करना शुरू कर दिया। आज हम देखते हैं कि विकसित देश जब अपनी वैश्विक जिम्मेदारियों से विमुख हो रहे हैं तो ऐसे में भारत जैसे विकासशील देश गुट-निरपेक्ष आंदोलन के मंच का प्रयोग करके एक बेहतर और पंचशील के सिद्धांतों पर आधारित विश्व के निर्माण में अग्रणी भूमिका निभा सकते हैं। भारत के पास एक सुनहरा

अवसर भी है कि वह संयुक्त राष्ट्र सुरक्षा परिषद 🛮 दो बजे अट्टालिकाओं पर होती आतिशबाजी और 🛮 हैं। विकास के नाम पर हरे–भरे वृक्षों को काटा जा को लोकतांत्रिक चरित्र देने, अंतरराष्ट्रीय मुद्रा कोष और विश्व व्यापार संगठन जैसे बहुपक्षीय संस्थानों को सुदृढ़ करने और आतंकवाद विरोधी आंदोलन को मजबूत बनाने में गुट निरपेक्ष मंच का प्रयोग करे। एशिया और अफ्रीका के देशों का सहयोग पाने में यह मंच लाभकारी सिद्ध होगा।

दरअसल, हमें समझना होगा कि गुटनिरपेक्ष कोई संगठन नहीं बल्कि एक आंदोलन है और आंदोलन एक निरंतर चलने वाली प्रक्रिया है। इसके केंद्रीय मुद्दे बदलते रहते हैं लेकिन उसकी

वही करेंगे जो हमारा मन करेगा!

सवाल है कि दिल्ली में पटाखों पर प्रतिबंध के बावजूद इतने पटाखे कहां से फोड़े गए? धुएं का घोंसला बनती दिल्ली में इस नियम का सख्ती से पालन क्यों नहीं किया गया? प्रदूषण के खिलाफ लडाई में हम सरकार का साथ क्यों नहीं देते?

 सत्यम भारती, जेएनयू, नई दिल्ली

किसी भी मुद्दे या लेख पर अपनी राय हमें भेजें। हमारा पता है : ए-८, सेक्टर-7, नोएडा २०१३०१, जिला : गौतमबुद्धनगर, उत्तर प्रदेश

आप चाहें तो अपनी बात ईमेल के जरिए भी हम तक पहुंचा सकते हैं। आइडी है : chaupal.jansatta@expressindia.com

प्रासंगिकता कभी समाप्त नहीं होती। आज हमारे समक्ष जो चुनौतियां हैं वे गंभीर होने के साथ-साथ मानव अस्तित्व के लिए भी खतरा हैं। ऐसे में 120 देशों वाला यह आंदोलन आपसी सामंजस्य स्थापित करने और सतत विकास लक्ष्यों को हासिल करने में मददगार ही होगा।

• राहल राज, नवादा, बिहार

ठेंगे पर नियम

हमारे देश की खासियत रही है यहां कोई भी कानून या नियम बनने से पहले ही उससे बच निकलने के उपाय खोज लिए जाते हैं। इसका उदाहरण बिहार की गई शराबबंदी और दहेजबंदी तो हैं ही, दिल्ली में प्रदूषण मुक्ति के लिए पटाखों पर लगाया गया प्रतिबंध भी है। दिल्ली में रात के

# पर्यावरणीय संकट

इसमें दो राय नहीं कि आज जलवायु परिवर्तन हमारे समक्ष सबसे गंभीर वैश्विक पर्यावरणीय संकट है। कई मायनों में यह हमारी सभी समस्याओं में से सबसे महत्त्वपूर्ण है। पिछले कुछ दशकों से तो पर्यावरण के प्रति काफी लापरवाही बरती गई है। विकास के चक्कर में दुनिया ने पर्यावरण का जम कर दोहन किया है और यही वजह है कि प्रकृति भी अपना रौद्र रूप दिखा रही है। एक सिद्धांत है कि हम जितना प्रकृति से दूर होंगे प्रकृति भी हमसे उतनी ही दूर होती जाती है। यही वजह है कि कहीं सूखा, कहीं आवश्यकता से अधिक बरसात, कहीं तेज गर्मी, कहीं विनाशकारी सुनामी और कहीं भीषण भूकंप अब आम हो चले

मध्यरात्रि तक बजने वाला डीजे का शोर इस बात रहा है। ऐसे में समस्त प्राणी जगत का जीवन कैसे का द्योतक है कि कितनी भी पाबंदी लगा लो, हम सुरक्षित रहेगा? यदि हमें पृथ्वी पर रहना है तो अभी भी मौका है कि प्रकृति की रक्षा करें।

साजिद अली, इंदौर, मध्यप्रदेश

बढ़त साइबर अपराध

राष्ट्रीय अपराध रिकॉर्ड ब्यूरो के आंकड़ों के मृताबिक साइबर अपराधों में विस्फोटक रफ्तार से वृद्धि न केवल चौंकाने वाली है बल्कि सरकारों के लिए एक नया सिरदर्द बनती जा रही है। आज कोई भी व्यक्ति जो कंप्यूटर और मोबाइल इस्तेमाल करता है वह साइबर अपराध से नहीं बचा है। गरीब से लेकर अमीर और नेता से लेकर अभिनेता अभी इसकी जद में हैं। खासतौर पर महिलाएं साइबर अपराध की आसान शिकार मान ली जाती हैं क्योंकि कई कारणों से वे पुलिस में शिकायत दर्ज कराने से परहेज करती हैं। ताजा मामला केरल की एक राष्ट्रीय पुरस्कार प्राप्त अभिनेत्री मंजू वरियर का है जिसने सोशल मीडिया पर अपने खिलाफ अभियान चलाने का आरोप लगाते हुए एक फिल्म निर्देशक के खिलाफ पुलिस में शिकायत दर्ज कराई है।

देश में बढ़ते अपराधों में साइबर अपराधों में हैकिंग, ठगी, भय और अफवाहें फैलाना, देश विरोधी प्रचार आदि शामिल हैं। आज मोबाइल और कंप्यूटर दैनिक जीवन की जरूरत बन गए हैं। इनका सदुपयोग हो इसके लिए सरकार के स्तर पर और ज्यादा सजग होकर निरंतर काम करने की जरूरत है। उपभोक्ताओं के स्तर पर जागरूकता और चौकसी भी बहुत जरूरी है क्योंकि यदि हम मोबाइल और कंप्यूटर इस्तेमाल करते समय सावधान रहें तो साइबर अपराध काफी कम हो सकते हैं।

बिजेंद्र कुमार, दिल्ली विश्वविद्यालय

नई दिल्ली

# हिन्दुस्तान

# आतंकी का अंत

उसका खौफ तो अभी भी था, लेकिन इस्लामिक स्टेट का कथित खलीफा अल-बगदादी पिछले कई महीनों से एक हारती हुई ताकत की तरह था। इराक और सीरिया के वे सारे इलाके उससे मुक्त कराए जा चुके थे, जिन पर कभी उसका नृशंस राज चलता था। ऐसी खबरें लगातार आ रही थीं कि वह भागता फिर रहा है। रविवार को जब हम अपने देश में दीपावली मनाने की तैयारियां कर रहे थे. अमेरिकी फौज ने बगदादी को उसकी उसी मांद में मार गिराया, जहां वह पिछले काफी समय से छिपा हुआ था। इस्लामिक स्टेट के इस सरगना का मारा जाना पूरी दुनिया के लिए राहत की एक बड़ी खबर है। यहां तक कि पश्चिम एशिया के उन देशों के लिए भी, जिनका राजकाज अभी भी इस्लामिक रीति-नीति से चलता है। बगदादी ने जो पागलपन पैदा किया था, उसका पहला खतरा भी इन्हीं देशों को था। लेकिन इस्लामिक स्टेट का खतरा सिर्फ इसी तक सीमित नहीं था। वह तरह-तरह से पूरी दुनिया को घेर रहा था। एक छोटे से दौर में इसने तकरीबन पूरी दुनिया के नौजवानों को गुमराह करने की कोशिश की। यहां तक कि यूरोप और अमेरिका के आधुनिक समाज के बहुत सारे

बगदादी का मारा जाना

राहत की एक खबर है,

स्थितियां बनाने की है,

पूरी दुनिया के लिए

अब चुनौती ऐसी

जिसमें कोई और

बगदादी पैदा न हो।

नौजवान खिलाफत कायम करने का सपना लेकर इराक पहुंचने लग गए थे। चंद भारतीय नौजवान भी इस जाल में फंसे। और राहत इसलिए भी कि इराक और सीरिया में इस्लामिक स्टेट का आधार भले ही खत्म होने लगा था, लेकिन उसका काला झंडा दुनिया के अलग-अलग हिस्सों की कई ताकतों के हाथों में दिखने लगा था। और तो और, हमारे पड़ोसी

आर ता आर, हमार पड़ासा पाकिस्तान और अफगानिस्तान तक में। हम यह भी कह सकते हैं कि बगदादी की मौत से उन लोगों को भी न्याय मिला है, जिनका उसकी फौज ने बड़ी निर्ममता से कल्लेआम किया था। उन औरतों को भी न्याय मिला, जिनसे इसके गुर्गों ने न सिर्फ बलात्कार किया, बल्कि उसे जायज भी ठहराया। और उन पत्रकारों को भी, जो रिपोंटिंग के लिए गए थे और उनके सिर कलम कर दिए गए।

इसके आगे असल सवाल फिलहाल यह है कि क्या इसके बाद दुनिया उस आतंक से मुक्त होने की ओर बढ़ेगी, जो इस समय हम सबकी पहली जरूरत भी है और पहली मुराद भी ? कुछ साल पहले जब अमेरिका ने पाकिस्तान में अल-कायदा के सर्वेसर्वा ओसामा बिन लादेन को मार गिराया था, तब भी यही उम्मीद बांधी गई थी। मगर ऐसा हुआ नहीं। महत्वपूर्ण यह भी है कि अल-कायदा और इस्लामिक स्टेट लगभग एक जैसे हालात की उपज थे। पहले सोवियत संघ और फिर अमेरिका के अफगानिस्तान को बीच मंझधार में छोड़ने से जो शून्य पैदा हुआ, उसी में अल-कायदा विकसित हुआ था। इस्लामिक स्टेट भी इसी तरह अस्तित्व में आया। जो ताकतें बाद में सबसे बर्बर आतंकी संगठन बनीं, महाशिक्तयां कभी उन्हीं की हमजोली थीं। बगदादी का अंत महाशिक्तयों के लिए अपने गिरेबान में झांकने का वक्त भी है।

दुनिया की पहली चुनौती अब यही होनी चाहिए कि फिर कोई लादेन या बगदादी न पैदा हो। यह सच है कि पिछले कुछ समय में पूरी दुनिया में वे ताकतें कमजोर हुई हैं, जो सौहार्द, भाईचारे और प्रेम की बात करती हैं। नफरत का बोलबाला बढ़ेगा, तो अल-बगदादी जैसे लोग ही सामने आएंगे। इसलिए हर तरह की कट्टरता और नफरत को खत्म करना ही हमारी पहली प्राथमिकता होनी चाहिए।

in text of it is in the

# विदेशी अखबार से

# कविता की जरूरत

2014 में कविता के लिए दिए जाने वाले फॉरवर्ड पुरस्कारों के निर्णायकों की पीठ के प्रमुख जेरेमी पक्समैन ने कहा था, 'यह माना जाता है कि कविता अपनी प्रासंगिकता गंवा चुकी है। मुझे आमतौर पर यही लगता है कि कवि दूसरे कवियों से ही संवाद करते हैं, वे लोगों से संवाद नहीं करते।' यह केवल पांच वर्ष पहले की बात है, लेकिन अब लगता है, वह शिकायत किसी दूसरी दुनिया से आई थी।

कविता की दुनिया के बंद सिरे हाल ही में ढीले पड़े हैं। कई लोगों को सोशल मीडिया पर साझा होने वाली कविताओं में सार दिखने लगा है, जिनमें साझा करने योग्य भावनाएं होती हैं। ये कविताएं कुछ योग्य आशुकवियों द्वारा लिखी होती हैं। बोली जाने वाली कविताओं को चाहने वालों की संख्या भी बढ़ रही है। इन कविताओं का संसार इंटरनेट के माध्यम से वितरण के लिए खुल गया है। अभी

बोली जाने वाली कविताओं को चाहने वालों की संख्या भी बढ़ रही है। इन कविताओं का संसार इंटरनेट के माध्यम से वितरण के लिए खुल गया है। अभी theguardian लोगों में जो बहस चल रही है, यह उसके विपरीत है। रोवान विलयम्स ने कहा है,

पिछले हफ्तों में बोरिस जॉनसन और डोनाल्ड ट्रंप ने शब्दों की गरिमा को जब लांछित किया है, तब कारगर किवताओं की आवाज को संगीत में बदल देना राजनीतिक जरूरत है। किवता की आलोचना अप्रासंगिक हो चुकी है। जे बर्नांड की सर्ज किवता 1981 में हुए एक कांड पर आधारित है, जिसमें एक उपद्रव ने 13 अश्वेत युवाओं की जान ले ली थी। विदयन रिविथरन की किवता में पत्नी और जीवन से प्रेम के अलावा श्रीलंका की समस्या भी है। इल्या कमेन्सकी की किवता में एक सैनिक एक गूंगे बच्चे की हत्या कर देता है। फियोना बेंसन की किवता में खलात्कार और यौन हिंसा के विरुद्ध एक ग्रीक मिथक का उपयोग हुआ है। इन किवताओं को खूब तैयारी के साथ लिखा गया है। ये सभी किव अपने-अपने तरीके से राजनीतिक हैं। नस्ल, शरीर, नारीवाद, लिंग, पर्यावरण, पहचान, राज्य हिंसा इत्यादि विषयों की अलग-अलग तरीके से खोज करते हैं। ये ऐसे विषय हैं, जिनसे किवता और किवता संग्रहों को दायरा बढ़ गया है। इन किवयों को पढ़ना, अपने समय के उतार-चढ़ाव, संघर्ष से गुजरना है। ये ऐसे एहसास हैं, जिनका इजहार न्यूज बुलेटिनों के जिरए नहीं हो सकता।

**द गार्जियन,** ब्रिटेन

७९ साल पहले



#### नंगी तलवार

समाचार पत्रों के संचालकों और सम्पादकों का जीवन और उनका धंधा कितना संकटापन्न है, यह वे ही जानते हैं, जो इस धंधे में लगे हुए हैं। उनके सिर पर सदा ही नंगी तलवार लटकी रहती है। कानून के शिकंजों में उनके हाथ-पैर जकड़े रहते हैं। लोकमत के आश्रय पर न चलने वाली एकतन्त्र और स्वेच्छाचारी सरकारों को समाचारपत्रों से वैसा ही भय बना रहता है, जैसा कि कंस को वसुदेव के पुत्र होने का बना रहता था। जैसे कंस वसुदेव के लड़का होते ही उसका गला दबोच देता था, वैसे ही स्वेच्छाचारी सरकारें या तो पत्रों को जन्म ही नहीं लेने देतीं, जन्म लेने पर उन्हें पनपने नहीं देतीं और वे पनप जायें, तो उन पर इतने बंधन लगा देती हैं कि

जनता की भावनाओं का न तो वे प्रकाशन कर सकते हैं और न उसका पथ-प्रदर्शन ही कर पाते हैं। हिन्दुस्तान के देसी राज्यों की जीती-जागती मिसाल हमारे सामने है। ऐसा एक भी राज्य नहीं है जिसमें समाचारपत्रों को उतनी भी आजादी है, जितने की ब्रिटिश भारत में है। बड़ी कठिनाइयों के बाद प्रेस के लिए किसी प्रकार आज्ञा भी मिल जाए, लेकिन पत्र के लिए आज्ञा मिलना प्रायः असम्भव हो जाता है। आज्ञा मिलने पर पत्रों के लिए ऐसी शर्तें पेश की जाती हैं कि स्वतंत्र रूप से

है। आज्ञा मिलने पर पत्रों के लिए ऐसी शर्तें पेश की जाती हैं कि स्वतंत्र रूप से पत्रकार-कला का विकास हो नहीं सकता। 29 अक्तूबर, 1940 को प्रकाशित हमारी सामूहिक सम्हलकर धीरे चलते और बोलते हैं, उनकी थ खुशहाली के लिए जरूरी पट्रस व्यंजन भी होते हैं, पर बहुत दिनों तक र है कि हम जो सामूहिक रूप से सिर के बल खड़े हैं, सीधे बाद उन्हें सूखी रोटियां मयस्सर होती हैं। कुछ पैरों पर खड़े हो जाएं। अंधेरे में जो रस्सी पड़ी है, ज्ञान की की कुट्टी काटते और घर के काम-काज भी ि

है कि हम जा सामूहिक रूप से सिर के बेटा खेड़ है, साथ पैरों पर खड़े हो जाएं। अंधेरे में जो रस्सी पड़ी है, ज्ञान की रोशानी में उसे रस्सी कहना शुरू करें। अपने त्योहारों को फिर से प्रकृति व मानव-श्रम से जोड़ें। प्रकृति को सहेजें और स्वास्थ्य व शिक्षा पर निरंतर ध्यान देकर मानव श्रम का सशक्तीकरण करें। हमारी खुशहाली सामूहिक ही हो सकती है, निपट वैयक्तिक नहीं, क्योंकि मनुष्य समुदाय में रहने वाला प्राणी है, अलग-थलग होकर जो क्षणिक

खुशहाली आएगी भी, वह टिकाऊ नहीं होगी। **मनोज कुमार** की फेसबुक वॉल से

# बगदादी की मौत के मायने

## फिलहाल इस सवाल का जवाब हमारे पास नहीं है कि क्या बगदादी के मारे जाने से इस्लामिक स्टेट का पूरी तरह सफाया हो जाएगा?

वैश्विक सुरक्षा के लिहाज से अबू बकर अल-बगदादी का मारा जाना काफी अहमियत रखता है। बर्बर आतंकी संगठन इस्लामिक स्टेट, यानी आईएस का यह सरगना दुनिया का नंबर एक वांछित आतंकवादी था और अपनी मनमर्जी खलीफा बन बैठा था। ऐसे में, यह समझा जा सकता है कि जब 'खलीफा' का अंत हो जाए और उसने अपने उत्तराधिकारी की घोषणा न की हो (हालांकि अंतरराष्ट्रीय मीडिया के मुताबिक अब्दुल्ला करदाश को नया सरगना बनाया गया है), तो उसके कथित जेहाद को कितना बड़ा झटका लगेगा। बगदादी की मौत से खासतौर से सीरिया और इराक में गंभीर असर पड़ेगा, जहां उसके मुख्यालय रहे हैं। शनिवार की रात अमेरिकी सेना ने आईएस को जबर्दस्त चोट पहुंचाई है।

हालांकि बगदादी के आखिरी वक्त के विश्लेषण से

आईएस की कई रणनीतियों के संकेत मिलते हैं। अमेरिकी राष्ट्रपित डोनाल्ड ट्रंप की घोषणा के मुताबिक, उसे उत्तर पश्चिमी सीरियाई प्रांत इदिलब के बारिशा कस्बे में मार गिराया गया है। यह इलाका अल-कायदा के सहायक संगठन हुर्रास अल-दीन का गढ़ माना जाता है। आईएस का जन्म बेशक अल-कायदा की कोख से ही हुआ है, लेकिन बाद में दोनों संगठनों के आपसी मतभेद इतने गहरे हो गए थे कि दोनों एक-दूसरे को निशाना बनाने लगे थे। बगदादी का इदिलब आना यह बताता है कि आईएस अब इतना कमजोर हो चुका है कि वह अपने दुश्मन से हाथ मिलाने को आतुरहै। अपने पुराने संबंधों को वह फिर से जिंदा करने की कोशिश कर रहा है।

अच्छी बात है कि पूरी दुनिया में दहशत फैलाने में जुटी वैश्विक जेहादी तंजीमों को जो देश अब तक मदद करते



आए हैं, वे भी इनके खिलाफ हो गए हैं। पश्चिम एशियाई देशों की सेनाएं अब इन संगठनों के खिलाफ सिक्रय हैं। सऊदी अरब की फौज यमन में, तो तुर्की की सेना सीरिया में हमलावर हैं। ईरान भी जंग में उतर चुका है। इसका अर्थ है कि पश्चिम एशिया के ये देश अब अपनी फौजों को सीधे-सीधे इन गुटों के खिलाफ उतार रहे हैं। इससे जाहिर तौर पर ये 'नॉन स्टेट एक्टर्स' कमजोर पड़ने लगे हैं। आलम यह है कि श्रीलंका में बीते अप्रैल में जब सीरियल बम धमाके किए गए थे, तो आईएस ने दो दिनों के

बाद हमले की जिम्मेदारी ली और ऐसा कोई प्रत्यक्ष वीडियो प्रमाण भी तुरंत जारी नहीं किया, जो अपने दावे के समर्थन में वह आमतौर पर पेश करता रहा है। स्पष्ट है, सीरिया में इसका नियंत्रण तंत्र बुरी तरह तबाह हो चुका है और बगदादी की मौत से इसकी सांगठनिक हैसियत भी खत्म होती दिख रही है।

तो क्या बगदादी के अंत के साथ आईएस का भी खात्मा हो गया है? फिलहाल इसका सटीक जवाब नहीं दिया जा सकता। नई परिस्थिति में संभव है कि इससे जुड़े संगठन अपनी तरफ से कुछ करने की कोशिश करें। अभी उनका मनोबल भले ही कमजोर हुआ हो, लेकिन अपनी उपस्थिति दिखाने के लिए वे किसी आतंकी घटना को अंजाम दे सकते हैं। दरअसल, आतंकवाद को लेकर ठोस रूप से कुछ भी भविष्यवाणी नहीं की जा सकती। इसका चरित्र अनुमानों से परे माना जाता है। तब भी मौजूदा परिस्थित यही बता रही है कि वैश्विक आतंकी संगठनों पर प्रहार बढ़ा है और ये जमातें आपसी मतभेदों को खत्म कर किसी भी तरह से एक होने की कोशिश कर रही हैं। इसिलए सिर्फ आईएस पर ही चोट करने से वैश्विक आतंकवाद का अंत नहीं हो सकता।

इन संगठनों का एक और चरित्र गौर करने लायक है। जब कभी सीरिया में इनको कोई बड़ा आघात लगता है, तो दूसरे मुल्कों में इनकी गतिविधियां तेज हो जाती हैं। ऐसा करने का मकसद अपने समर्थकों को अपनी मौजूदगी दिखाना होता है, ताकि यह संदेश दिया जाए कि संगठन या विचारधारा को कोई खास झटका नहीं लगा है। इसीलिए बगदादी की मौत के बाद संभव है कि दुनिया भर में जेहादी गतिविधियां तेज हो जाएं। भारत पर भी समान रूप से खतरा है, जिसके लिए नई दिल्ली को चौकस रहना होगा। इसका अंदेशा इसलिए भी है, क्योंकि इसी साल मार्च में जब आईएस सीरिया के बगूस में अपनी पकड़ खो रहा था, तब उसके एक महीने के बाद उसने श्रीलंका में सिलिसलेवार बम धमाके किए थे। इस बार भी बगदादी की मौत के बाद वह कुछ करने की योजना बना सकता है, जिससे तमाम मुल्कों को सतर्क व सावधान रहने की

जरूरी यह भी है कि वैश्विक आतंकी संगठनों को अलग-अलग बांटकर निशाना बनाने की बजाय एक मानकर उन पर हमला बोला जाए। आईएस, अल-कायदा या किसी भी अन्य जेहादी समूह को अब एक मानना इसलिए भी आवश्यक है, क्योंकि ये तमाम तंजीमे एक जुट होने लगी हैं। आने वाले दिनों में हो सकता है कि ये सभी इकट्ठा हो जाएं। इनमें एकता बढ़ने की यह आशंका मानव समाज के हित में नहीं है।

एक बात और। बगदादी की मौत के बाद आईएस भी अल-कायदा की राह (ओसामा बिन लादेन की मौत के बाद) पर बढ़ता दिख रहा है। बेशक इसके नए सरगना की घोषणा कर दी गई है और यह बताया जा रहा है कि परोक्ष रूप से अब्दुल्ला करदाश ही संगठन चलाता रहा है, फिर भी इसके पास ऐसा कोई अड्डा या तंत्र नहीं बचा है, जिससे यह देश-दुनिया में अपनी सक्रियता दिखा सके। इसलिए संभव है कि भविष्य में हम किसी नए गुट का नाम सुनें, जो इसी संगठन की कोख से निकला हो।

(ये लेखक के अपने विचार हैं)

नश्तर

# सयाने उल्लुओं का बच निकलना

दुर्लम सपनों को मुंहमागी कीमत पर बेचने के चक्कर में उल्लुओं की सदैव दरकार रहती है।

अमावस्या की रात बीत गई। दिवाली गुपचुप मन गई। हर रात की तरह उसे बीतना ही था। अब वे उल्लू राहत की सांस लेंगे, जिनकी जान तांत्रिक अनुष्ठानों के चलते सांसत में थी। धन-संपदा की देवी लक्ष्मी के स्थाई वास के लिए लोगों को उल्लुओं की दरकार रहती है। दीपावली के नजदीक आने पर उल्लुओं के व्यापारी रात-दिन कोटरों में उन्हें तलाशते हैं। नादान उल्लू पकड़े जाते हैं, सयाने जैसे-तैसे अपनी जान बचा ले जाते हैं। कतिपय इसलिए बचे रह जाते हैं, क्योंकि उनका उल्लूपन किसी न किसी वजह से जगजाहिर नहीं हो पाता।

उल्लुओं का इस दुनिया में बने रहना बहुत जरूरी है। अनेक ऑनलाइन और ऑफलाइन कारोबार इन भले उल्लुओं के सहारे ही चलता है, जो उल्लू होने के बावजूद उल्लू जैसे दिखते नहीं हैं। अब तो सुनने में यह आ रहा है कि जन्मजात उल्लू भी नहीं चाहते कि वे उल्लुओं जैसे

साइबर संसार

प्रणाली है और संपत्ति का

वितरण बेहतर होगा, तो

इसका उत्पादन भी बेहतर

होगा। इस दावेदारी से

संपत्ति का स्रोत मान

आगे बढ़कर बाजार को

लेना अंधेरे में पड़ी रस्सी

को सांप मान लेना है।

बाजार और खुशहाली

आज जब हर पर्व बाजार से जुड़ चुका है और प्रकृति

और मानव श्रम से कट चुका है, तब यह रेखांकित करना

आवश्यक है कि संपत्ति का निर्माण मूलतः बाजार में नहीं

होता। संपत्ति का स्रोत प्रकृति और मानव श्रम है। मानव

श्रम में शारीरिक और मानसिक, दोनों प्रकार के श्रम को

जोड़ लीजिए, हालांकि यह विभाजन आत्यंतिक नहीं,

बलाघात पर आधारित है। बाजार की तरफदारी करने

वाले जो पुराने लोग हैं, वे भी इतना ही दावा करते हैं कि

राज्य की तुलना में बाजार संपत्ति के वितरण की बेहतर

सामूहिक खुशहाली

के लिए जरूरी है कि

हम अपने त्योहारों

को फिर से प्रकृति व

मानव-श्रम से जोडें।

दिखें, क्योंकि उल्लू जैसा दिखने में वाकई बड़े खतरे हैं। कोई उल्लू की आंख का बुरी नजर से बचाने वाला यंत्र बनाकर बेचने की जुगत में है, तो कोई उसके अस्थि-पिंजर से मर्दानी ताकत बढ़ाने वाला गंडा उत्पादन का कुटीर उद्योग खोले बैठा है; कोई उसके खून से गंजी खोपड़ी पर केश की खेती लहलहाने वाला उर्वरक बनाने का धंधा जमाए है, तो कोई उसके किसी अवयव से शर्तिया बेटा होने का मनीबैक गारंटी वाला नुस्खा लिए। दुर्लभ सपनों को मुंहमागी कीमत पर बेचने के चक्कर में उल्लुओं की सदैव दरकार रहती है। कुछ उल्लू रेडीमेड होते हैं, कुछ बाकायदा बनाए जाते

कुछ उरलू रजमह जात है, कुछ बाकायदा बनाए जात हैं। प्रकृति का एक रहस्य यह है कि समाज में जिसकी उपयोगिता होती है, उसकी संख्या में बढ़ोतरी खुद-ब-खुद होने लगती है; जिसकी उपयोगिता समाप्त हो जाती है, उसका अस्तित्व स्वतः मिट जाता है। फिलहाल उल्लुओं की इस दुनिया में बड़ी आवश्यकता है। नटखट गौरैया नदारद हो गई, पर किसी को फिक्र भी नहीं, उसके कलरव की इस दुनिया को जरूरत नहीं। दीपावली तो बस एक बहाना है, किसी न किसी को तो उल्लू बनना ही था।

निर्मल गुप्त

#### मनसा वाचा कर्मणा

## अति परिचय का दोष

हम जब पहली बार किसी प्रिय व्यक्ति से मिलते हैं, तो हमारे भीतर एक उत्साह और उछाह का भाव हिलोरें मारने लगता है। वह अगर मन लायक है, तो कहां उठाएं कहां बिठाएं, उसका कैसे सत्कार करें- इसमें हमें आनंद का अनुभव होता है। पर धीरे-धीर यह प्रेम एक ऊब में बदलने लगता है। रोज-रोज मिलना, रोज-रोज की असंख्य बातें कभी न कभी चुभने लगती हैं। आज के माहौल में 'डेटिंग' करने वाले युवा विवाह के पहले बरसों तक एक-दूसरे को समझने और आजमाने में लगे रहते हैं। शुरू-शुरू में वे अपने भीतर के सर्वोत्तम को बाहर लाते हैं, अपने गुणों को बखानते, अपनी उदारता और सहनशीलता को बात-बात में परोसते हैं।

संस्कृत में एक कहावत अतिपरिचयात अवज्ञा के रूप में मिलती है। जैसे ईख का रस निकल जाए, तो उसका बचा हुआ रसहीन हिस्सा बेकार हो जाता है, वैसे ही ज्यादा परिचय सम्मान छीन लेता है। हमने देहातों में ऐसे दूल्हे देखे हैं, जो विवाह के कुछ दिनों तक सम्हलकर धीरे चलते और बोलते हैं, उनकी थाली में षट्रस व्यंजन भी होते हैं, पर बहुत दिनों तक रह जाने के बाद उन्हें सूखी रोटियां मयस्सर होती हैं। कुछ गाय के चारे की कुट्टी काटते और घर के काम-काज भी निपटाते देखे जाते हैं और अति परिचय की अवज्ञा के उदाहरण बन जाते हैं। परिचय का आकर्षण बड़ी तेजी से अपनी ओर खींचता है। हितोपदेश की कहानी का एक बढा बाघ जब शिकार करने में लाचार हो जाता है, तो हाथ में सोने का कंगन लेकर सबको अपनी ओर बुलाता है कि 'मैं निरामिष हूं, व्रत कर रहा हूं और दान देना चाहता हूं, जो भी दान लेने जाता है, वह सीधा स्वर्ग जा पहुंचता है।

महेंद्र मधुकर

नजरिया

# खिलौनों के जरिए एक पुरानी सोच बदलने की कोशिश

समाज बदल रहा है, मगर वे खिलौने नहीं बदल रहे, जो समाज के बारे में धारणाएं बनाते हैं।

**क्षमा शर्मा** वरिष्ट पत्रकार



बाजार में तरह-तरह के खिलौने मिलते हैं। सिपाही या सैनिक के रूप में जो खिलौने दिखते और बिकते हैं, वे पुरुषों के रूप में होते हैं। ये खिलौने उस युग की सोच की उपज हैं, जब सेना या पुलिस में सिर्फ और सिर्फ पुरुष ही होते थे। ये लड़कों को सैनिक बनने की प्रेरणा तो देते हैं, मगर साथ ही सभी बच्चों के मन में शुरू से ही यह धारणा भी डाल देते हैं कि सेना और पुलिस का काम सिर्फ पुरुषों का है। हालांकि दुनिया में तकरीबन हर जगह पुलिस और सेना के रूप बदलने शुरू हो चुके हैं, लेकिन ये खिलौने नहीं बदले। और नहीं वे धारणाएं बदलीं, जो बचपन में बच्चों के मन में सैन्य बलों की एक छवि अंकित कर देती हैं।

अमेरिका में सन 1930 से लेकर अब तक ऐसे खिलौनों में कोई बदलाव नहीं हुआ हैं। ये अक्सर प्लास्टिक के बने होते हैं और पुरुष ही होते हैं। अपने देश में भी विमान उड़ाते, टैंक पर सवार, हाथों में बंदूक लिए इसी तरह के खिलौने मिलते हैं। मेलों-टेलों में भी ये खूब दिखाई देते हैं। लेकिन अमेरिका में खिलौने बनाने वाली कंपनियों का ध्यान अब इस तरफ गया है। ऐसी कोशिशें चल रही हैं कि अगले साल से बाजार में महिला सैनिकों के रूप में भी खिलौने मिलने लगें।

दरअसल, अमेरिकी खिलौना कंपनियों का ध्यान इस ओर आकर्षित किया छह साल की बच्ची विवियन लॉर्ड ने। विवियन ने सिपाही खिलौने खरीदे। मगर उसने पाया कि वे सब के सब पुरुष हैं। जब उसने अपनी मां से इस बात की शिकायत की, तो मां ने कहा कि बेहतर होगा कि वह खिलौना कंपनी को चिट्ठी लिखे। और विवियन ने चिट्ठी लिख दी। उसने लिखा कि आप महिला सैनिकों को खिलौने के रूप में क्यों नहीं दिखाते, जबिक वे बड़ी संख्या में सेना में काम करती हैं? मेरी सहेली की मां भी उनमें से एक हैं। उसने यह भी लिखा कि कई कंपनियों ने खिलौने के पैकेट को गुलाबी रंग दिया है, लेकिन उनके अंदर पुरुष सैनिक ही हैं। विवियन ने यह पत्र तीन बड़ी खिलौना कंपनियों को भेजा।

शुरू में तो इस पत्र को नजरंदाज कर दिया गया, लेकिन जब इस खत की चर्चा मीडिया में होने लगी, तो विवियन की बात को कई तरफ से समर्थन मिलने लगा। इसके बाद खिलौना बनाने वाली कंपनियों को गंभीर होना पड़ा। यह फैसला आसान हो भी नहीं सकता था। बाजार में किसी नए खिलौने को लॉन्च करना महंगा सौदा है। डिजाइन से लेकर मार्केटिंग और प्रचार तक, इसके लिए बड़े निवेश की जरूरत होती है। लेकिन अब जब लग रहा है कि इसके लिए बाजार तैयार है, तो कोशिशें चल पड़ी हैं।

बच्चों को सैनिक बहुत आकर्षित करते हैं। फौजियों जैसे कपड़े भी उन्हें खूब पसंद आते हैं। स्कूलों की फैंसी ड्रेस प्रतियोगिताओं में अक्सर सैनिक बने बच्चे सैल्यूट करते देखे जा सकते हैं। सैनिक होने में ऐसे कई अर्थ होते हैं, जो बच्चों को आकर्षित करते हैं। वीरता, साहस और जोखिम भरी स्थितियों में काम करना, ये सब बच्चों को सबसे ज्यादा भाने वाली स्थितियां हैं। फिर इसमें देशभिक्त वगैरह के भाव भी जुड़ जाते हैं, जो बच्चों को सहज स्वीकार्य होने वाले पहले मुल्यों में शामिल हैं।

माना जाता रहा है कि वीरता, साहस और जोखिम के काम समाज के एक वर्ग के हिस्से ही आते हैं, जिन्हें पुरुष कहा जाता है। औरतों का वीरता से दूर-दूर तक कोई

### बाहर की दुनिया पुरुषों की, घर के अंदर की दुनिया औरतों की। इन परिभाषाओं को वक्त ने सिर के बल खड़ा कर दिया है।

वास्ता नहीं रहा। इतिहास में पुरुषों की वीरगाथा और युद्ध में अगर पराजय हो, तो औरतों के शत्रु के हाथ में पड़ने के मुकाबले बलिदान की गाथाएं मिलती हैं। औरतें लड़ती हैं, तो खूब लड़ी मर्दानी, वह तो झांसी वाली रानी कहलाती हैं। इन पंक्तियों में भी एक लड़ती हुई और मैदान में अपने युद्ध कौशल का जौहर दिखाती स्त्री की तुलना मर्द से ही की गई है। इसका कारण कोई छिपा नहीं है। बाहर की दुनिया पुरुषों की रही है और घर के अंदर की दुनिया औरतों की। नए वक्त और नई सोच ने इन परिभाषाओ को सिर के बल खड़ा कर दिया है। कई देशों में तो महिलाएं युद्ध तक लड़ रही हैं। अपने आस-पास देखें तो हमें कई महिला पुलिस और अर्द्धसैनिक बलों की महिलाएं दिख जाएंगी। जरूरत अब उन खिलौनों को बदलने की है, जो खेल-खेल में ही बच्चों को कई तरह की धारणाएं दे देते हैं। ऐसी धारणाएं भी, जो मौजूदा दौर की सच्चाई से मेल नहीं खातीं।

(ये लेखिका के अपने विचार हैं)

### मेल बॉक्स

### आतंक पर बड़ी चोट

यह किसी सपने के सच होने जैसा है। विश्व में आतंक का सबसे बड़ा आका बगदादी को अमेरिकी सेना ने मार गिराया है। यह हम नहीं कह रहे, बल्कि अमेरिकी राष्ट्रपति डोनाल्ड ट्रंप ने इसकी घोषणा की है। लेकिन प्रश्न उठता है कि क्या केवल बगदादी की मौत से इस दुनिया से आतंक समाप्त हो जाएगा? यह सोचना बिल्कुल गलत है। माना कि विश्व के सबसे बर्बर आतंकी गुट का वह सरदार था। लेकिन यह मानना गलतफहमी होगी कि आतंक का अंत हो गया है। जब तक अल-जवाहिरी, हक्कानी, मसूद अजहर और हाफिज सईद जैसे आतंकी मौजूद हैं, तब तक दुनिया आतंकवाद से मुक्त नहीं हो सकती। और यह

काम सिर्फ अमेरिका, भारत, इराक जैसे कुछ देशों द्वारा नहीं हो सकता। जब तक विश्व के सभी देश एकजुट होकर इसके खात्मे का संकल्प नहीं लेंगे, तब तक आतंक का यह कैंसर बना रहेगा। इसे दुर्भाग्य ही कहेंगे कि रूस जैसी महाशक्ति दिखावें के लिए आतंक का विरोध तो करती है, पर इसके समूल नाश के लिए कदम से कदम मिलाकर नहीं चलती। गोविंद कुमार, वैशाली, बिहार

anupamyadavay943@gmail.com

### बगदादी का मारा जाना

इस्लामिक स्टेट (आईएस) का सरगना अबू बक्र अल-बगदादी अमेरिकी सेना के हमले में मारा गया। इसे आतंक के विरुद्ध बड़ी सफलता माना जा रहा है। इससे पहले अल-कायदा के सरगना ओसामा बिन लादेन के मारे जाने पर भी यही कहा गया था। दरअसल, ये आतंकी रक्तबीज हैं। देखना यह चाहिए कि वह कौन-सी उर्वर भूमि है, जिससे ये पैदा हो रहे हैं। जब तक मूल पर चोट नहीं की जाएगी, तब तक आतंक का यह वृक्ष हरा-भरा रहेगा और ओसामा, मुल्ला उमर और बगदादी जैसी शाखाएं फूटती रहेंगी। जगदीश त्यागी, गाजियाबाद

jagdishtyagi1954@gmail.com

### गौ-संवर्द्धन की बात हो

श्रीकृष्ण द्वारा इंद्र के प्रकोप से ब्रजवासियों को संरक्षित करने के बाद से ही गोवर्धन पूजन आरंभ हुआ। इसका तात्पर्य गौवंश के संवर्द्धन, सुरक्षा और पालन से है। गोवर्धन पूजन दरअसल गौवंश का संवर्द्धन करने वाले पर्वतों, प्रकृति और पर्यावरण की सुरक्षा, गौ पालकों का सम्मान और गौवंश की सुरक्षा का एक संकल्प है। वास्तव में, इस पर्व को पुरातनकाल से प्रचलित पर्यावरण दिवस के रूप में भी देखा जा सकता है। गौवंश का संवर्द्धन और सुरक्षा के लिए यदि हम सामर्थ्य के मुताबिक कोई एक कार्य जीवनपर्यंत करने का संकल्प लें, तो हम सही मायने में गोवर्धन पूजा के पुण्यभागी होंगे। एक समय गली में कई जगह गोवर्धन बनते थे। मगर अब ऐसा नहीं होता। घटते गौवंश के साथ घर में गौ-माता को रखने की भावना का कमजोर

होना, बढ़ते एकल परिवार आदि

इसके कारण हैं। हमें समझना होगा

कि गाय के बिना हमारी संस्कृति अधूरी है। मंगलेश सोनी, धार, मध्य प्रदेश

manglesh.soni1053@gm

#### नतीजों के निहितार्थ

महाराष्ट्र और हरियाणा विधानसभा चुनावों के परिणाम का यदि ईमानदारी से आकलन किया जाए, तो दोनों ही राज्यों में भाजपा की सीटों का घटना इस बात की ओर इशारा करता है कि इन चुनावों में राष्ट्रीय मुद्दों पर स्थानीय मुद्दे भारी पड़े। विधानसभा चुनावों में ऐसा होना स्वाभाविक ही है। मगर विपक्ष में बिखराव के बाद भी खासकर हरियाणा में भाजपा का बहुमत तक नहीं पहुंचना बता रहा है कि पार्टी के अंदर काडरों की उपेक्षा से गुटबाजी व असंतोष पनप रहे हैं। वहीं, महाराष्ट्र में भाजपा-शिवसेना की तुम्हीं से मोहब्बत तुम्हीं से रार है, ऐसी प्यार वाली नीति को जनता ने बेमन से स्वीकार किया है। दोनों राज्यों में भले ही भाजपा की सरकार बन रही है, लेकिन नतीजे बता रहे हैं कि यदि स्थानीय मुद्दों और पार्टी के निष्ठावान कार्यकर्ताओं व नेताओं की उपेक्षा जारी रही, तो आगामी चुनावों में पार्टी की सेहत और बिगड़ सकती है।

rishikeshdubeybjym@gmail.com

साधारण डाक से पत्र भेजने के अलावा आप ईमेल से भी अपनी राय भेज सकते हैं। ईमेल से 'आपकी राय' भेजने के लिए हमारा पता है- mailbox@livehindustan.com

# The Tribune

ESTABLISHED IN 1881

# Soft targets in Kashmir

Killers of truckers shouldn't go unpunished

N the run-up to Jammu and Kashmir's reorganisation on October 31, militants are getting desperate and targeting the sitting ducks — non-Local truckers and traders dealing in apples. On October 14, Sharief Khan, a truck driver from Rajasthan, was shot dead in Shopian district. A couple of days later, a trader from Abohar (Punjab), Charanjeet Singh, was gunned down. Truck driver Mohammad Illiyas and helper Zahid Khan, both from Rajasthan, and a brick-kiln worker from Chhattisgarh, too, lost their lives. Stakeholders in the apple trade — the backbone of Kashmir's economy — had already been facing problems due to the curbs on movement and communication, imposed after the Modi government announced the abrogation of Article 370 on August 5. The industry seemed to be getting back on its feet this month as the restrictions were gradually eased, but the gun-toting elements are bent on spreading terror. The irony that most of these victims of Islamist secessionist violence in the Muslim-majority territory are themselves Muslims is not lost on anyone.

About 17-20 lakh metric tonnes of fruit is transported from Kashmir to the rest of the country, fetching a revenue of around Rs 8,000 crore. This time, less than half has been despatched so far, giving sleepless nights to growers as well as traders. The militants' main agenda is to scare away 'outsiders' and provoke the troops, but the losses they are causing to the industry is antagonising local residents.

J&K has not witnessed any major terror attack in the past few months; credit for that goes to the security forces, but the latest bloodshed should not be reduced to a mere footnote. Such killings ought to evoke the same outrage as do mob lynchings in other parts of the country. It's praiseworthy that the authorities have set up 'safe' zones for fruit dealers in Shopian to procure the produce from farmers and send it outside the Valley. These confidence-building measures need to be backed by tighter security and relentless counter-insurgency operations. As the common Kashmiri apprehensively looks forward to a new dawn, the attempts to jeopardise his livelihood should be tackled with a firm hand. Grenades and apples simply can't be packed together.

# Polluting Diwali

Firecracker schedule flouted; air quality dips

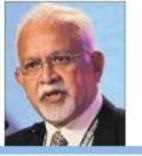
UNJAB, Haryana and NCR were again engulfed in the polluted shroud of firecracker emissions and ear-splitting noise this Diwali as the air quality deteriorated to the dangerous 'very poor' and 'severe' categories in the cities of Noida, Kurukshetra, Sirsa, Ambala, Jalandhar, Gurugram, Jind, Hisar, Delhi, Panipat, Faridabad and Ludhiana. That the air quality index was better this time than in the recent years was no consolation to hapless residents whose festival of lights was marred as they suffered from bouts of choking, coughing, wheezing and other respiratory ailments. Aggravating the situation is the spike in paddy stubble burning witnessed in the region during this time of the year along with unfavourable weather conditions that trap the poisonous micro-particles and play a major role in polluting the environment.

Unfortunately, executing the Supreme Court-mandated regulations towards ensuring a clean festival period from Dasehra to Gurpurb and Christmas to New Year remains a challenge in North India. Caring two hoots for the two-hour window (8 pm to 10 pm for Diwali) that was enforced last year for enjoying the fireworks, many people continue to flout the rule. Educative programmes in schools and colleges, public awareness campaigns and laser shows extolling the benefits of celebrating in a green, ecofriendly manner seem to have gone up in smoke. Neither has the fact that hundreds of people were booked and arrested last year in the region for flouting the ban on making, selling and bursting traditional hazardous firecrackers been much of a deterrent. This irresponsible behaviour and lack of civic sense is criminal for not only are the polluters impacted, but also those abiding by the law who too are forced to inhale toxic fumes.

India is already battling smog on a multi-pronged level — rising vehicle emissions, construction dust that refuse to settle and polluting industries that run with impunity. As per a study, 22 of the world's 30 most polluted cities are in India. In this bleak scenario, to lift the blanket of haze, let us encourage community Diwali, if not a blanket ban on pyrotechnics.

# Diplomacy key, not sanctions

Trade curbs on Turkey & Malaysia for J&K stance will be counterproductive



**MK BHADRAKUMAR** 

FORMER AMBASSADOR

ANCTIONS as coercive diplomacy are as old as the hills, traceable at least from the time of the ancient Greeks, when in 432 BC, the Athenian Empire imposed a trade embargo on neighbouring Megara. The ostensible reason was the Megarians' trespass on land sacred to Demeter, the goddess of fertility, and the killing of the Athenian herald who was despatched to their city to reproach them. It was an act of revenge. However, rather than bludgeon the Megarians to submission, the sanctions prompted them to seek help from Sparta, which in turn became one of the factors that triggered the calamitous Peloponnesian War that ended Athenian hegemony in classical history. Sanctions can have unintended consequences.

The lessons of those times live on in the present day. Sanctions are ineffective unless they are universal. Cut off one supply and the adversary will find another. The failure of the severe US sanctions on Cuba to bring Fidel Castro to heel is the best example. That's why sanctions were rarely used as tool of statecraft — that is, until the Americans made them fashionable.

The Indian establishment ought to figure out the matrix of sanctions, as the government is likely considering trade curbs on Turkey and Malaysia in retaliation to their leaders' critical comments on the J&K situation. The Ministry of External Affairs has reportedly sensitised concerned quarters to 'go slow on all diplomatic and business relationship with Turkey and Malaysia as part of retaliatory measures.'

India has taken umbrage at Malaysian PM Mahathir Mohamad's remarks at the UN General Assem-



BREAK ICE: Ankara and Kuala Lumpur are vital regional capitals that India shouldn't alienate. What we need is an intensification of diplomacy.

Modi should go ahead with the visit to Turkey. If we are unable to communicate with experienced statesmen like Mahathir and Erdogan, it reflects poorly on our diplomacy.

bly session in New York in September that 'despite UN resolution on J&K, the country has been invaded and occupied'. Mahathir called on India to 'work with Pakistan to resolve this problem'.

Mahathir has since insisted with characteristic stubbornness, 'We will speak our minds. We will not retract or change what we've said. We felt that the people of Kashmir had benefited from the UN resolution, and all countries should abide by it, not just India or Pakistan but even the US. Otherwise, what's the use of having the UN?'

In similar vein, Turkish President Recep Erdogan said in his speech at the UNGA, 'One of the problems to which the international community still does not devote enough attention is the Kashmir conflict, which awaits a solution for 72 years.' He added that in order for the 'Kashmiri people to look at a safe future together with their Pakistani and Indian neighbours, it is imperative to solve the problem through dialogue and on the basis of justice and equity, and not through collision.'

Frankly, there's nothing so very

explosive in what Erdogan or Mahathir said, except perhaps the latter's interpretation of J&K's accession. But Mahathir is known to be an original thinker. Erdogan has been rather modest despite the fact that like Mahathir, he too is under the spell of the charming Pakistan PM Imran Khan.

When the Modi government espouses the message of 'universal brotherhood' and seeks to 'turn this world into a garden of peace' — to borrow from Modi — why such petulance? Modi should go ahead with the planned visit to Turkey. If we are unable to communicate with experienced statesmen like Mahathir and Erdogan, it reflects poorly on our diplomacy. Both are known to be pragmatic leaders, their ideological convictions notwithstanding. And Malaysia and Turkey are resilient nations living in a tough neighbourhood.

So, where lies the problem? In the case of Turkey at least, I can recall the parting advice by then Foreign Secretary K Raghunath when I was assigned to Ankara as ambassador in 1998. He made two profound observations: one, that Turkey has a glori-

ous history spanning centuries as practitioner of international diplomacy and it should be possible to get through to them to moderate their unfriendly stance on Kashmir and their irrational backing of Pakistan; and, two, the key lies in intensifying the bilateral relationship and deepening strategic communication.

During the next three years, we could transform the relationship beyond recognition, thanks largely to the highlevel exchanges between intelligence agencies, in particular the four-day visit to Turkey by then Deputy PM and Home Minister LK Advani, accompanied by AK Doval representing the Intelligence Bureau, and the three-day visit separately by the head of R&AW, AS Dulat. Ankara, which kept contacts with Kabul and Kandahar, significantly enhanced our understanding of the Taliban regime. The Turkish pragmatism surged as then parliamentary leader of Turkey's present ruling party, Abdullah Gul — Erdogan was in prison at that time — turned up with a dozen 'Islamist' opposition MPs (some wearing head scarves) to Hilton Ankara for the launch of our friendship group. The meridian was reached when at PM Vajpayee's invitation, Bulent Ecevit visited India in 2000 — overflying Pakistan.

The Turkish stance on Kashmir had entirely changed by then. My sense is that something of that goodwill and understanding is still traceable in Erdogan's remarks, if we assimilate them properly. The world is not tailormade for us and has own perceptions of the J&K situation, no matter our self-righteous narrative. Winning over dissenters isn't easy but is doable. Sanctions are not the way forward. What we need is an intensification of diplomacy, as Raghunath thoughtfully observed 20 years ago.

Ankara and Kuala Lumpur are key regional capitals that India shouldn't alienate. Mahathir and Erdogan are headstrong leaders who can't be browbeaten, but also are erudite minds amenable to reasoning. The bottomline, of course, is that the appalling J&K situation normalises during the next four-month period, as PM Modi has promised.

# Not what Guru Nanak taught

LETTERS TO THE EDITOR

COL HP SINGH (RETD)

S we celebrate the 550th birth anniversary of Guru Nanak, Imy mind is in awe of one of the greatest religious thinkers ever born in the subcontinent. Accredited with setting up a distinctive social and spiritual platform, his teachings are anchored in virtue, equality, goodness and love. 'Phir uthi akhir sada touheed ki Punjab se, Hind ko ek mard-e-kamil ne jagaya khwab se (Again from the Punjab the call of monotheism arose, a perfect man roused India from slumber), said Allama Iqbal, the legendary Urdu poet in his praise of the founder of the fifth largest religion of the world.

Guru Nanak succeeded in awakening the masses, but half a millennium

later, sadly the symptoms of relapse of the masses into superstition, intolerance and ritualism are hard to conceal. *Ik Onkar*, the oneness of universe and monotheism in its absoluteness, lay at the core of his philosophy. He attempted to connect man to God through the path of spirituality, thereby relegating organised religion to just another means of crowd control.

Fast-forward to the 21st century and one is dismayed at what remains of his message. The self-appointed 'messengers of God' have assumed the role of middlemen. As spirituality takes a backseat, religion has become an effective tool of dividing people and inciting hatred. It is deja vu, as dharma has once again 'taken wings and flown away', as the Guru had lamented seeing the state of affairs in the Punjab of the 16th century — 'Kal kaati rajey kasai, dharam pankh ka ood rahiya'. Guru Nanak spent a lifetime trying

to get the two faiths to live in harmony. 'Na koi Hindu na Mussalman' is arguably one of his first sermons. Ironically, his own land of five rivers has been partitioned beyond any scope of reconciliation. So deep has been the divide that one of the descendants of Mardana, lifelong companion of Guru Nanak, Rababi Ghulam Mohammad of Lahore, was once dissuaded from reciting kirtan because he professed a different faith. The outwardly appearance of Guru Nanak's followers has taken precedence over the awakening of the inner being for self-actualisation, taking out the very

soul from his teachings.

It is a paradox of sorts that the Guru's final resting place is on the fault lines of a clash of ideologies — 'Shama-e-haq se jo munawwar ho ye woh mehfil na thi, barish-e-rehmat hui lekin zameen qabil na thi' (Perhaps this was not the appropriate assembly which would appreciate the lamp of truth, rain of mercy did fall but the land turned out to be barren).

It is nonetheless heartening that the two regimes on either side of the Radcliffe divide are trying to make the celebrations a success. The Kartarpur corridor has given hope of actuating the Guru's dream. But if his message is not really understood, this bridging of gaps between people will remain yet another case of superficial symbolism.

# THOUGHT FOR THE DAY

All war represents a failure of diplomacy.

— Tony Benn

ON THIS DAY...100 YEARS AGO

The Tribune.

LAHORE, WEDNESDAY, OCTOBER 29, 1919

# Increasing the Production of Food.

THE present great rise in the price of food is largely attributed to the world's decreased production and it is understood that there will be no material reduction of prices until production is increased. During the recent debate on high prices of food and clothes in the Imperial Legislative Council, the Hon'ble Pandit Malaviya asked what steps the Government was taking to increase production. It was suggested that irrigation schemes should be taken up on a larger scale and cultivation extended. The Government did not promise any special effort in this direction, but it is interesting to learn that in the United Kingdom, the Government created a special department called the Food Production Department for increasing the production of food grains and cereals. From the accounts now published of the work of this department, we learn that it introduced labour-saving machinery for agriculture on a scale unknown before and also trained rural mechanics for handling motor tractors for ploughing and similar mechanical devices which have now become a permanent feature of British agriculture. It appears that the employment of motor tractors and other machinery has enabled British farmers not only to extend cultivation on a remunerative scale during the war when high prices prevailed, but even the most conservative farmers are now confident of continuing their use in future when prices are likely to approach the normal level and even pay the increased wages on labour. These are valuable results produced by the Food Production Department, which, during the last two years, incurred a loss of £1,000,000. This loss is more than compensated by the results produced and by the purchase and introduction of motor tractors which were seldom used before. We wish to see efforts made to increase the production of food.

# **Unholy alliance**

The formation of the government by ML Khattar along with JJP leader Dushyant Chautala is an unholy alliance. It is not for the first time that the BJP has adopted an opportunistic approach to betray voters. Even when in J&K no single party was in a position to form the government, the BJP formed an unholy alliance with the PDP, and withdrew its support when J&K was completely destroyed by its actions. Further, the day after the alliance with the BJP was announced in Haryana, Ajay Chautala was granted a furlough from jail, a reminder of the fruits of power. The alliance has created mistrust among voters who gave their mandate against the saffron outfit.

**SK KHOSLA, CHANDIGARH** 

# Partnership may work

The Haryana Assembly election result is a mandate against the functioning of the BJP state government. One thing is clear that Hindutva and 'rashtriyavad' did not work in Haryana. Villages remained ignored and deprived of new facilities with regard to education, transportation and health. The prices of all commodities of daily use were touching the sky, but the prices of crop yield remained stagnant. Consequently, the financial condition of farmers

worsened. Now, the BJP is again forming the government with the support of the JJP. Voters in general are of the opinion that the action of the JJP is unethical and against their wishes. But the decision is politically correct and in the interest of farmers. villagers and youth. It is hoped that the new combination would work for brotherhood and progress of every section of society without any discrimination on the basis of caste, creed and region.

**DS HOODA**, ROHTAK

# **Mockery of system**

Khattar has somehow again made it to the driver's seat, despite the dismal performance in his first innings. The dera chief's arrest and its aftermath, where police fired on hapless protesters, killing over 30; unemployment and injustice to weaker sections and women issues cost him dear. But the JJP betrayed voters to soften the dispensation's stand towards the family's omission and commission. This is a mockery of the system where people elected 50 MLAs of their choice and shall be governed by the 40 whom they did not vote.

**BR DHIMAN,** HAMIRPUR

Peace initiative

before us, with the AQI raised to a dreadful level. The SC in 2018 had banned fireworks and enforced a twohour limit to burst crackers. But such Refer to the editorial 'Passage to orders have gone up in smoke, which peace' (October 26); though the founshould be viewed as criminal neglect.

this fee. Hopefully, the agreement will

remain as enduring as the Indus

Water Treaty. Though both India and

Pakistan are claiming credit for being

the first to suggest a visa-free passage

to Kartarpur, the need now is to take

peace initiatives on other issues too. It

MS KHOKHAR, BY MAIL

will be a real tribute to Guru Nanak.

**Long way to green Diwali** 

Much has been said about green Diwali

over the years but the aftermath is well

Violators should be brought to book. dation stone-laying ceremony of Kar-The government has launched green tarpur corridor got marred by controversies and petty politics, peace may crackers that reduce particulate matter yet prevail. The corridor holds great by 30%. An awareness abhiyaan potential for bringing both sides to the should be launched on a large scale, so talking table. It came to fruition that green Diwali doesn't remain a disbecause both sides showed good tant dream. sense to delink it from other issues **RAMESH DOGRA, PANCHKULA** souring the relationship. Much has **Remembering Shastri** been made over the \$20 fee levied per pilgrim paying obeisance at the shrine, which has been called by some sion' (October 27), Shastri was a true as 'jazia' that Sikhs were forced to pay to their oppressors, the Mughal kings. It is hoped that some way will be found to resolve the problem as poor pilgrims may be unable to pay

# Apropos 'Shastri rose to the occa-

follower of Mahatma Gandhi. He was an embodiment of peace, progress and humanity. He was the first PM who was aware of the ground realities of Indian masses. His slogan 'Jai Jawan Jai Kisan' came at a critical moment and earned him more respect than any other PM. The entire nation responded to his entreaty to fast during the time of wheat shortage. It was during his tenure that Ayub Khan, the dictator of Pakistan, inspired his generals by saying, 'An average Hindu has no fight in him, attack and conquer the war.' His words proved counterproductive and Pakistan suffered heavy casualties. Shastri rose to take up the highest seat of authority but remained humble to the needs and requirement of the people. It is a fact that during his tenure, Indian

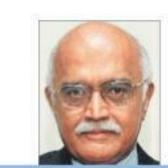
democracy was thriving at its peak.

**NIRMAL KUMAR, PANCHKULA** 

Letters to the Editor, typed in double space, should not exceed the 200-word limit. These should be cogently written and can be sent by e-mail to: Letters@tribunemail.com

## epaper.tribuneindia.com

# Our Congressional lobbying efforts ineffective



**VAPPALA BALACHANDRAN** EX-SPECIAL SECRETARY, CABINET SECRETARIAT

N October 24, the MEA official spokesperson issued a strong statement on the hearing by the Foreign Affairs Sub-Committee of the US House of Representatives (October 22) chaired by Brad Sherman on the human rights situation in Kashmir. He said that the hearing was used to undermine India's recent steps to check cross-border terrorism in Kashmir. The Kashmiri Overseas Association (KOA) also alleged that the hearing was a one-sided narrative. However, Alice Wells, Acting Assistant Secretary, State Department, asked India on October 25 to provide a roadmap to restore political and eco-

nomic normalcy in Kashmir. This hearing is an indication that our current lobbying with the US Congress is not effective. It is for this reason that our diplomats and bipartisan Indian-American leadership had worked together from the 1980s to form a Congressional caucus on India and Indian-Americans. This was achieved in 1993 by Padma Bhushan awardee Frank Pallone and former Congressman Bill McCollum. It helped in resisting legislative challenges from the resourceful Pakistan lobby which wanted to appoint a special envoy on Kashmir, like for the Balkans.

So, it was unbelievable that Brad Sherman, presently co-chair of the India Caucus, was also holding the sub-committee hearings on October 22! Press reports had said that he had conveyed to our Ambassador Harshvardhan Shringla that his constituents in San Fernando Valley had told him about the Kashmir "stories of difficulties encountered by the constituents and others".

In fairness, Sherman had also issued a public statement on September 30 mentioning that foreign militants were intimidating the Kashmiri public.

It is only "constituency pressure" that moves a US Congressman, as the bipartisan American-Israel Public Affairs Committee (AIPAC) had found out in 1981. This was after a massive defeat to the Israel lobby when President Reagan concluded the AWACS deal with Saudi Arabia. Tom Dine, then director of AIPAC, told the American Jews: "Spread the power base, go to the grassroots, get involved in the political process."

Dine discovered that American Jews, although only 2 per cent of the electorate, could swing results in 80 Congressional districts for presidential elections since 89 per cent of them lived in 12 key electoral college states. He then established statewide chapters of AIPAC to lobby with Congressmen to support legislation favouring Israel and defeating anti-Israel bills. Jewish polling increased to 90 per cent against a national average of 50 per cent. It is said that the Jews could tilt the scales in over 80 Congressional districts for the presidential elections. The most notable victory for the Jewish lobby was the reversing of the Jordan arms deal by President Reagan in 1986.

Our Indian-American leadership also followed this strategy with success in the 1980s-1990s when veteran Indian-American activists like Dr Joy Cherian, Dr Swadesh Chatterjee and



The Kashmir hearing of October 22 is an indication that our lobbying with the US Congress is not effective. It is for this reason that our diplomats and bipartisan Indian-American leadership had worked together from the 1980s to form a Congressional caucus on India and Indian-Americans. It helped in resisting legislative challenges from the Pakistan lobby which wanted to appoint a special

envoy on Kashmir.

Dr Thomas Abraham had set up bipartisan Indian lobby groups and state chapters for applying constituency pressure on Congressmen. All these efforts were negated with the emergence of the "Hindus for Trump" groups, thereby dividing the Indian community on religious grounds. Our present strategy of concentrating only on President Trump or organising glitzy "Howdy Modi" shows does not result in legislative success.

A similar hearing was held for five days in 1976, spread over four months (June-September), by the Committee on International Affairs of the US House of Representatives on the human rights violations in India during the Emergency. This was preceded by a statement published by 80 leading Americans. including Noam Chomsky, in the hearing as Americans considered New York Times on March 5, 1976. American specialists on India, like Prof Ainslee Ambree from Colombia University, were examined by the committee. Indian representatives

like Ram Jethmalani, then Chairman, Bar Council of India, and Leila Kabir Fernandes were also examined.

Professor Ambree had even acknowledged that there was widespread breakdown of law and order by the spring of 1975. This was one of the reasons put forward to justify the Emergency, like how our present government is citing cross-border terrorism as the reason for the "lockdown". However, Ambree added that this did not justify massive arrests and incarceration using special laws.

The committee accepted that the US did not have much leverage on India and had quoted Indira Gandhi's statement in Calcutta in March 1976 that she would not permit foreign nations to interfere in India's internal affairs. But they decided to continue with the India as a shining example of liberal thinking against the background of dictatorial trends in the Asian neighbourhood. They said that even Gandhi valued American public opinion.

Traditionally, human rights have been the principal goal of the US foreign policy.

The earliest such intervention was in 1872 when the US urged the Rumanian government to stop ill treating their Jews. Such demarches were made in 1880, 1903 and 1906 with

Russia to stop killing the Jews. In

1935, they condemned the Turkish

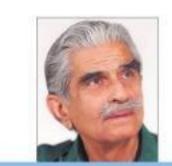
massacre of the Armenians.

With the advent of the Cold War, the Congress found that the State Department was reluctant to deal with human rights violations as the executive branch's policy was selective condemnations based on political considerations. They then started making legislative provisions to enforce human rights.

They did it mildly in 1973 by adding a "Sense of the Congress" in Section 32 of the Foreign Assistance Act to deny US assistance to a country which imprisoned opponents for political reasons. As there was no follow-up action by the State Department, the Congress passed a legal proviso as Section 502B in 1974. This denied foreign military assistance to countries indulging in the suppression of human rights, except in "extraordinary circumstances" when the President should report the reasons to the Congress. This was to acknowledge the primacy of the President in foreign policy.

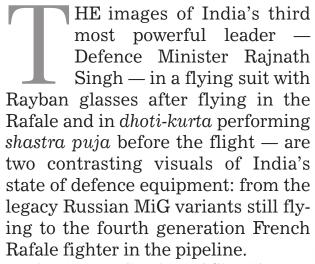
In 1975, the International Development and Food Assistance Act (S-116) linked the receipt of economic assistance to the human rights standard. The exception was when the assistance would directly benefit the needy people in such a country. The 1976 Arms Export Control Act and Export Administration Act of 1979 also have linked training of armed forces, police and intelligence agencies with human rights.

# Mr Rajnath Singh, take a leap of faith



MAJ GEN ASHOK MEHTA (RETD) MILITARY COMMENTATOR

Rajnath Singh erred by transforming what is traditionally a simple domestic military ceremony in the IAF into a political and religious one with all the trappings of a single religion abroad. Singh does not represent a singleservice faith. He is the Defence Minister of a multi-faith military which is secular, apolitical and professional.



It is also a reflection of Singh's conviction in religion, superstition and personal faith which he displayed on the 87th Air Force Day and Dasehra while performing the traditional *shas*tra puja in France on receipt of the first Rafale aircraft from his French counterpart. The deification of the Rafale was very elaborate. The Ambassador to France was asked to arrange for a *pandit*. Singh cracked a coconut, placed flowers, tied *mouli*, applied the *Om tilak*, all behind the cockpit while tying chillies and lemons to the wheels of the aircraft — the ritual watched by a bemused French audience. In this puja, Singh was assisted by an Indian priest and Air Commodore-rank mili-

tary air attache to France. As a soldier, I have witnessed and performed the shastra puja in my battalion for six decades on Vijayadashami, a ritual which is strictly in the domain of three persons: the Commanding Officer, the unit priest and the seniormost non-officer rank officer, the Subedar Major. All weapons



**DEIFYING RAFALE:** In the military, it's best not to mix religion with superstition or politics.

are symbolically worshipped before they are returned to the Quarter Guard. One has never known an outsider perform this ceremony even if he is the Defence Minister of India.

The Rafale belongs to the IAF, which has never performed a religious ceremony abroad while receiving a new imported aircraft. At an election rally in Haryana, Singh had announced that he wrote Om on the Rafale, 'as per our tradition'. After Bofors, Rafale has proven to be politically volatile, especially the procedure followed in its acquisition on which the Supreme Court has reserved its judgment, even as the ruling party showcased it electorally before its oper-

**MEDIUM** 

ationalisation. Applying the *tilak* on an

aircraft is not an IAF tradition.

Singh's actions and his self-defence have attracted criticism from the opposition, many calling it theatrics and puja politics. NCP chief and former Defence Minister Sharad Pawar mocked Singh for tying chillies and lemons to ward off evil as truck drivers do. Singh's colleague, Finance Minister and former Defence Minister Nirmala Sitharaman, whose main contribution to defence was the defence of Prime Minister Narendra Modi on the purchase of Rafale, both inside and outside Parliament, said: "Those who had faith had the right to conduct ritubut Defence Minister of India." She compared his shastra puja with Indian diplomats/politicians launching ships abroad by cracking a coconut (used to be a bottle of champagne). But no *Om* was emblazoned on the ship. A letter to the editor of *The Pio*neer newspaper read: 'Politicians wedded to Hindutva ideology are adept at converting every event into an opportunity.' He suggested that chillies and lemons should have been attached to Chandrayaan-II. In the military, it is best not to mix

als because he is no ordinary citizen

religion with superstition or politics. Singh's final statement was defiant: 'I did what I thought was right and will continue to do so. This is our faith, that there is a super power, and I have believed it since childhood.' Never to be left out of India's internal affairs, Maj Gen Asif Ghafoor, head of Pakistan's ISPR (Inter-Services Public Relations), chipped in: 'Nothing wrong in Rafale *puja* as it goes by the religion and that must be respected. It is not machine alone which matters, but competence, passion and resolve of the men behind the machine. Proud of

Singh erred by transforming what is traditionally and essentially a simple domestic military ceremony in the domain of the IAF into a political and religious one with all the trappings of a single religion, abroad. Singh does not represent a single-service faith. He is the Defence Minister of a multi-

Pakistan Air Force Shaheens.'

faith military which is secular, apolitical and professional. In all-India caste Army regiments, the prayer room contains multi-faith areas where soldiers of different denominations worship their God. Although Singh has asserted he will do what he did in France, again, for the sake of the Indian armed forces, he should take a leap of faith and avoid doing it.

As Defence Minister, Singh has done great things: sending powerful signals of India's rise as a great power; raking up the issues of No-First Use after visiting Pokhran and retaking PoK in the aftermath of the parliamentary resolution of 1994; opening up Siachen to tourism and generally boosting the morale of the armed forces. At his election rally in Satara, Maharashtra, PM Modi had said his government had brought India's armed forces on a par with those of other countries and provided the

Judging from the sparse funding for capital account of the defence budget in the last five years, Modi's claim is an exaggeration. Singh's real contribution to the military would be in getting at least Rs 50,000 crore annually for capital spending, over and above the existing liabilities during the remaining term of this government in order to catch up with China. Deterring Pakistan has largely been achieved. The government has shown recently how it can loosen its purse-strings. When there is a will, there is a way.

three services with modern weapons.

# YESTERDAY'S SOLUTION

epaper.tribuneindia.com

Across: 1 Armed, 4 Freedom, 8 Can, 9 Thingummy, 10 At a loss, 11 Alike, 13 Chubby, 15 Regard, 18 Spell, 19 Suffice, 21 A bit thick, 23 Wad, 24 Laundry, 25 Rayon. **Down:** 1 Archaic. 2 Miniature. 3 Ditto. 4 Flimsv. 5 Engrave. 6 Dim. 7 Maybe. 12 In a big way, 14 Belated, 16 Dresden, 17 Ossify, 18 Stall, 20 Fakir, 22 IOU.

# **ACROSS**

- 1 Bringer of important news (6)
- 4 Athletics field event (4,4)
- 9 Affix (6) 10 Assess (8)
- 12 Sour in manner (4) 13 Rush (5)
- 14 Become tired (4) 17 Intimate conversation (5-2-5) 20 Leave in haste (4.1.7)
- 23 A stone fruit (4) 24 Big and strong (5)
- 25 A defect (4) 28 Forcefully expressed (8)

## 29 Disease of plants (6) 30 Look like (8)

- 31 The prime (6) **DOWN** 1 Worrying problem (8)
- Act of retaliation (8) 3 To join (4) Animal without a backbone (12) Bring to a stop (4)
- Lacking sufficient skill (6) 8 Binding promise (6) 11 Mediocre (3-2-3-4)
- 15 Scatter loosely (5) 16 Cruel person (5) 18 Quiet and out-of-the-way (8) 19 Hidden non-paying
- passenger (8) 21 Seem (6) 22 Uproar (6)
- 26 Tranquil (4) 27 Colony of bees (4)

# 8 9 6 6 2 8 5 4 5 4

### OCTOBER 29, 2019, TUESDAY ■ Vikrami Samvat 2076 ■ Shaka Samvat 1941 ■ Kartik Shaka 7 ■ Kartik Parvishte 13 1441 ■ Hijari ■ Shukla Paksh Tithi 2, up to 3.48 am ■ Aayu Yoga up to 3.02 pm ■ Vishakha Nakshatra up to 11.00 pm ■ Moon enters Scorpio sign 5.35 pm ■ Bhayi-Dooj. ■ Vishvkarma Pujan. YESTERDAY'S SOLUTION 6 2 3 5 6 2 1

#### **TUESDAY** 17:37 HRS WEDNESDAY 06:35 HRS Foggy **CITY** MAX MIN Chandigarh 30 15 0 31 18 0 New Delhi PUNJAB 31 16 **Amritsar** Ö 31 15 Bathinda 0 Jalandhar 31 16 Ö 31 15 Ludhiana Ö HARYANA 33 19 Bhiwani 0 33 16 Hisar 0 31 18 Sirsa HIMACHAL PRADESH 13 0 Dharamsala 23 05 19 O Manali 20 09 Shimla O JAMMU & KASHMIR 29 Jammu 18 0 Leh

15

10

20

3

Srinagar

UTTARAKHAND

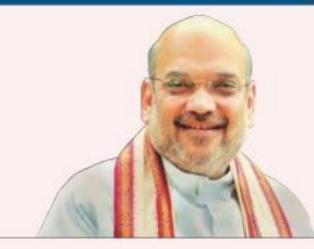
Dehradun

Mussoorie

TEMPERATURE IN <sup>O</sup>C



# MONDAY, OCTOBER 28, 2019



# POOR ARGUMENT Union home minister Amit Shah

The Congress only did lip service by saying 'garibi hatao' (remove poverty). But they only removed the poor. If they had really done something, we may not have been launching these schemes today.

# Towards true unnati, and ending MGNREGA

The plan to pay a subset of MGNREGA households for getting skilled is a great idea, will pave way for better jobs

**THAS BEEN** clear for a long time that MGNREGA is barely the poverty reduction tool it is often made out to be; at ₹204 per day per person, the average wage rate across the country is too low to sustain a household of five even if the card-holding member got 100 days of employment as promised under the programme. As it happens, just around a tenth of all households got this—in FY19, just 50.3 lakh households of the 5.5 crore that were alloted work reached the limit of 100 days of employment—and just around 43% of the households that have job-cards received employment under the programme. While MGNREGA outlays rose from ₹44,000 crore in FY16 to ₹70,000 crore in FY19, it is not clear how much it helps reduce poverty levels. For one, the wages are not enough to lift the really poor out of poverty, just around 50 days of employment are provided in a year and if this employment is not provided at a time when the individual has no other job, it is not an addition to the household income since some other paying job has to be sacrificed to get MGNREGA wages. The biggest problem, of course, is that MGNREGA has no in-built plan to reduce poverty since it doesn't really build any skills that can help workers get higher-paying jobs later; indeed, till some time back, MGN-REGA works were not even linked to any meaningful asset creation.

The government's proposed *Unnati* scheme, if it works as planned, offers MGNREGA beneficiaries a ticket out of the programme, and, in the long run, out of poverty. Under Unnati, the government will provide 100 days of training to one member from each MGNREGA household that completed 100 days of work under MGNREGA in FY19 in skills such as masonry or carpentry, with the trainee being given a stipend of upto ₹21,000 for the period; this translates into 100 days of training at the FY19 daily MGNREGA wage rate. Since a major reason for workers not opting for skilling was the opportunity cost in terms of lost wages, this takes care of that aspect. It is not clear if another member of the household can continue to avail of MGNREGA and get a job.

If the government is able to ensure the skilling effort is genuine and is able to impart valuable training to workers—the Aadhaar linkage will ensure only genuine beneficiaries get the benefits—this will go a long way in raising their productivity, and hence, incomes. Right now, based on a news report in The *Indian Express*, Unnati is planned as just a pilot with a ₹300 crore budget over three years; based on current wage levels, that means less than 50,000 people are to get skilled per year. That is less than a tenth of the 50.3 lakh who are eligible since they have completed 100 days of work. It makes sense to see how the scheme works and, if it does, to migrate as many MGNREGA workers as possible towards Unnati. An anti-poverty scheme that seeks to dissolve itself over time is the only scheme which is going to really work.

# Go beyond the test

Exam for independent directors won't guarantee better policing

**ECENT CASES LIKE** ICICI Bank, IL&FS, and Jet Airways, among others, are sure to have rocked confidence in corporate governance in India. Investors and other stakeholders would perhaps now back keener regulation, especially for independent directors whose oversight is supposed to check malfeasance by other board members or company executives. To that end, the government's move to make a self-assessed proficiency test for those wishing to become independent directors compulsory should seem welcome. From December onwards, they will have to apply to the Indian Institute of Corporate Affairs (IICA), under the corporate affairs ministry, before signing up for the job or within three months of the new rules coming into force. Once part of IICA's database, they will have to pass the test within a year. If a person has served as director or in a key managerial position in a large listed or unlisted company for more than 10 years, she is exempt from the taking the tests. However, the new regime fails to address the problems that afflict the system at present.

To be sure, many firms, especially family-owned ones, skirt the provisions on independent directors by appointing persons who are independent in name only. These 'independent' directors then serve mostly as rubber stamps, more so because they are often not familiar with laws governing companies, the conduct of business, even basic accountancy and other facets of corporate governance that they are supposed to ensure are complied with. A test helps here if clearing it means that the person has reasonable competence to fulfil the responsibilities of an independent-director; the person, thus, is less likely to allow herself to be manipulated in board functioning if she knows that she can't plead ignorance in the case of improprieties coming to light. The new regime, however, falls glaringly short of plugging the gaps, by missing the fact that the behemoths where corporate governance failure recently made headlines had heavyweights, with decades of corporate governance and industry experience, as independent directors. So, the lack of competence hardly seems to have been the problem. In the ICICI  $bank \, case, the \, board \, gave \, unwarranted \, support \, to \, former \, MD \, \& \, CEO \, Chanda \, Kochhar,$ who was facing allegations of serious misconduct, when it should have asked her to step aside till the time her name wasn't cleared. Similarly, the IL&FS board featured many heavyweights, including Maruti-Suzuki chairman RC Bhargava, and former shipping secretary Michael Pinto, as independent directors. The fact is that the company's risk management committee, of which Bhargava and Pinto were members, met just once between 2014 and 2018, when the IL&FS group's debt rose 87%! If decades of demonstrated expertise don't guarantee competent execution, what sense does exempting top management veterans make?

In any case, it makes little sense to hold only independent directors responsible for the actions of the company. The best thing for the government to do—to ensure both independent and other directors do their job—is to punish those who have allowed various irregularities in the companies on whose boards they are on. The penalties should include not just disgorging of all sitting fees, but also, if the lapses are a lot more serious in the case of IL&FS for instance, barring directors from being on the board of any company for a certain period of time.

# **FundingINNOVATION**

Allowing contributions to public-funded universities and incubators to be deemed CSR spending is a good move

■ HE 2% MANDATORY CSR spend is undoubtedly an additional tax on business in India. But, if CSR must be kept mandatory, it is perhaps better to put it to productive use. The government had earlier allowed allowing CSR contributions to central and state disaster relief funds and for certain welfare programmes, but whether such CSR spending had the desired impact or not was debatable. The government has now announced that companies can contribute to public-funded universities, IITs, incubators and autonomous bodies. This broadens the scope of CSR spending for India Inc while ensuring that the spend can have genuine beneficial impact. More important, it will also translate into a route for greater engagement between public universities and industry on R&D. Spending on research and development in India has been stagnant at 0.7% of GDP for the past two decades, whereas the likes of China have surged ahead.

Many Indian universities and research organisations suffer from chronic shortage of resources given limited collaborations. That is also one of the main reasons why none of the Indian universities feature in global top-100 rankings. Despite engineering institutes having on-campus incubation centres, and India being touted as the third biggest start-up hub in the world, universities' contribution has been minimal. The policy can help universities improve mechanisms for research, which has been another pain point for the economy. According to Clarivate Analytics, only 10 Indians figure among the world's top 1% highly-cited researchers in two fields. The CSR policy can, thus, be a good step towards fostering innovation,

# WELFARE FARMING

UP'S MILLION FARMERS' SCHOOL WILL IMPART AGRICULTURAL KNOWLEDGE AND TECHNIQUES TO FARMERS THAT CAN HELP PROMOTE INTEGRATED AND DIVERSIFIED FARMING SYSTEM

# Kisan Pathshala for doubling farmers' incomes

**VER SINCE PM** Narendra Modi announced his target of doubling farmers' incomes by 2022 at a farmers' rally in Uttar Pradesh (UP) in 2016, the Centre, as well as several state governments, have remained occupied with evolving ways and means to achieve this target by the proposed deadline. The UP government's Million Farmers' School (MFS) programme is one such innovative effort to enhance farmers' incomes through dissemination of agriculture-related information on technology, government schemes, and modern farming methods.

MFS, also popularly known as Kisan Pathshala, is an extension programme that the government of UP initiated in 2017 with a view to encourage the use of modern farming techniques, to make farming more profitable, sustainable, and resilient. Unlike traditional extension services, MFS integrates various facets of agricultural knowledge into a packaged format, and delivers it through village-level trainings across all districts in the state. Printed materials—booklets, pamphlets with such information are also distributed among participants.

The key objective of the MFS is to impart agricultural knowledge and techniques to farmers, which in turn can enhance agricultural production, improve soil health, and promote integrated and diversified farming systems.

The programme complements the existing ones implemented by the Agricultural Technology Management Agency (ATMA), Krishi Vigyan Kendras (KVKs), and other agencies. The training usually comprises of a daily twoto-three hour session in the evening for a module of three to five days in the primary school building in the village. Four such trainings—in Rabi 2017-18, Kharif 2018-19, Rabi 2018-19, and Kharif 2019-20—have taken place since its launch in 2017. Farmers



receive technical and vocational train-

ing on topics such as improved vari-

eties, crop and soil management practices, input use, and marketing. Farmers are provided information on the various government schemes available for the benefit of farmers, and how they could avail these benefits. Field-level officials from ATMA are deployed for training the farmers at the pathshala. The programme is funded through the Rastriya Krishi Vikas Yojana (RKVY) and utilises the existing physical and institutional infrastructure in training farmers, making it cost-effective. As the name suggests, it is aimed at reaching out to a million farmers every time—the program has successfully attracted an average of one million farmers in each of its editions.

The most important role of agricultural extension is to provide knowledge, technical expertise, exposure to innovation and research, and to create awareness about the plethora of schemes that may benefit the farmer. In doing so, it helps expand farmers' human capital endowment—both, their innate abilities and learned skills—enhancing their individual agricultural performance and, in turn, the aggregate agricultural performance.

In this light, the International Food Policy Research Institute (IFPRI) in a recent study evaluated the impact of the MFS on agricultural knowledge outcomes of participants vis-à-vis non-participants. Since the programme is relatively new, it is too premature to evaluate its impact on

technology adoption and incomes of farmers. Therefore, based on primary data collected through a survey of 1,336 households (participants and non-participants) from 64 villages across 16 districts representatively sampled in UP, the report assesses the direct quantitative impact of MFS on

Participants cited

a positive

perception with

regard to the

programme's

usefulness and

relevance as the

most important

reasons for

attending the

training

knowledge of farmers. An indirect, but significant impact of the programme has been a thorough revitalisation of the existing agricultural extension machinery in the state. This is likely to have a positive ripple effect on other extension programmes being run by the same government apparatus.

the level of agricultural

In terms of agricultural knowledge, participants are found to have 6-14% higher agricultural knowledge com-

pared to those who did not attend the training. The difference in the level of agricultural knowledge is observed across spatial and social dimensions—relatively larger differences in knowledge levels are seen among those belonging to less-developed regions and more disadvantaged social groups.

The programme seems to have fared well in terms of farmers' perceptions too. Participants cited a positive perception with regard to the programme's usefulness and relevance as the most important reasons for

attending the training. Over 85% of participants thought that the trainers were well-trained and knowledgeable; about 90% believed that the information provided in the training was useful. In terms of comprehensibility of the training, almost 95% of interviewed participants said that they could understand what was being taught. The novelty factor in the course content, however, seemed to be missing—over 70% of participants agreed that they already knew most of what was being taught. Interestingly, farmers displayed great enthusiasm for inclusion of new and advanced knowledge on cultivation of highvalue horticultural crops (such as

mushrooms, aloe vera, etc), pisciculture, agroforestry, floriculture, drip and sprinkler irriga tion, and innovative agribusiness models in the course curriculum as agenda for future training. On the whole, the programme has been received well—over twothirds of the interviewed participants were willing to attend similar train ings in future, and would even recommend it to others in their circles.

Preliminary results from our study point to an encouraging start. Given

its high penetration at the villagelevel, the MFS has potential to achieve much more. Improving its knowledge transfer mechanism for higher impact, and evolving the course content to suit the expansive horizons of the modern farmer should be high on the programme's menu for upcoming editions. Scaling-up the programme within the state, and replication of the model in other states may take the government a step further on the path for doubling farmers' incomes by 2022.

# A bold plan for clean cars

What distinguishes this proposal is not only its scale but also its ability to unite the American environmental movement, the American labour movement and large automakers

**CHUCK SCHUMER** 

**SCIENTISTS TELL US** that to avoid the most devastating effects of climate change, the world needs to be carbon neutral—to have net-zero carbon dioxide emissions—by mid-century. At the moment, we are not remotely on track to meet that target. We need to act urgently and ambitiously, which will require building diverse coalitions of political support.

That is why I am announcing a new proposal designed to rapidly phase out gas-powered vehicles and replace them with zero-emission, or "clean," vehicles like electric cars. The goal of the plan, which also aims to spur a transformation in American manufacturing, is that by 2040 all vehicles on the road should be clean.

What distinguishes this proposal is not only its scale but also its ability to unite the American environmental movement, the American labour movement and large automakers. It has already earned the support of climate groups like the Sierra Club, the Natural Resources Defense Council and the League of Conservation Voters; labour unions like the United Automobile Workers and the International Brotherhood of Electrical Workers; and car manufacturers like Ford and General Motors.

How would the plan work? First, it would give you a large discount on an American-made electric vehicle when you trade in a gas-powered car. Lower-income Americans could get an even bigger discount on a new vehicle or a discount on a used electric vehicle. In total, these discounts should result in 63 million fewer gaspowered cars on the road by 2030 and put America on a path to having 100% of new car sales be clean.

Second, the plan would make elec-

tric vehicles—and the necessary battery-charging infrastructure—accessible to all Americans, regardless of where they live and work. This would be accomplished by providing grants to states and cities to build charging stations, with a particular emphasis on low-income, rural and other underserved communities.

Third, the plan aims to establish the US as the global leader in electric vehicle and battery manufacturing by providing grants to retool existing manufacturing plants in the US and build new ones in this country that specialise in those technologies.

Accomplishing all of this would require an estimated investment of \$454 billion over 10 years.

You might object: Isn't the transition to electric vehicles already happening? Yes, but it is progressing too slowly. Transportation still accounts for nearly onethird of America's carbon output. Even though many American automakers are preparing for an all-electric future, electric vehicles are still too expensive for too many Americans,

and our country lacks sufficient battery-charging infrastructure.

Critics have long said that bold action on climate change would cost America, money and jobs. This is not true. My plan is estimated to create tens of thousands of new, good-paying jobs in this country and should reestablish the US as the world leader in auto manufacturing. Much as America experienced a revolution in auto manufacturing at the outset of the 20th century, America under this plan should experience a revolution in clean auto manufacturing at the beginning of this century.

But, we have to move fast. China now accounts for more than half of the world's electric vehicle market; it overtook the US as the world leader in 2015. If we don't match the level of China's commitment, we will miss an enormous opportunity.

I have promised that if Democrats win control of the Senate in November 2020, I, as majority leader, will introduce bold and far-

If Democrats win

control of the

Senate in

November 2020, I,

as majority leader,

will introduce bold

and far-reaching

climate legislation.

This proposal for

clean cars would

be a key element

of that bill

reaching climate legislation. This proposal for clean cars would be a key element of that bill.

Achieving progress in Washington on any major issue requires a broad coalition to break through the partisan gridlock. The support that this clean car proposal has already garnered from the environmental movement, the labour movement and automakers means not only that it is more likely to win support from the public but also that it is

more likely to become law. Having a clearly popular and beneficial proposal like this one as a key element of a larger climate plan will give Democrats a strong hand to play.

This proposal is about American jobs, American global economic leadership and protecting the planet. Nothing could be more worthy of pursuit.

# THE EDITOR

**LETTERS TO** 

# Voter's message

There were no distribution of sweets or bursting of crackers in the BJP offices in the wake of the election results in Maharashtra and Haryana. The overall mood of the customary BJP meeting in New Delhi head office post-the results was downbeat. In Maharashtra the BJP finds itself at the mercy of Shiv Sena, an ally given to displays of mercurial temperament. Both are natural allies espousing virulent nationalism in competition with each other. Sharad Pawar campaigned single-handed defying the vagaries of nature and improved on his party's tally. BJP has failed to cross or reach the half-way mark in Haryana despite playing the 'nationalist' card to the hilt. It has had to take a lot of flak for not spurning, if not for taking the support of Gopal Goyal Kanda, the accused in the Geetika Sharma suicide case. The independents and JJP now hold the key to government formation. On a more fundamental and deeper level, it is some consolation and even cheer that BJP did not perform well enough to claim popular validation for its sectarian moves, its role in creating a climate of fear, anxiety and insecurity or continue with its politics of arrogance and intimidation. The demolition of the myth of BJP's invincibility leading to the hope that the tables can be turned on the Hindutva-oriented right wing party is the best thing to happen to the country. The BJP has emerged as the single largest party in terms of seats and vote shares. At the same time, it will ignore the unambiguous message of the voters that they will not barter their votes for jingoism at its own peril. Now that the voters have begun to see through its ploys, the BJP cannot take the Indian voters for granted and escape delivering on the economic front. It has to accept that politics cannot be divorced from economics and act accordingly to curry favour with the voters. — G David Milton, Maruthancode

Write to us at feletters@expressindia.com

FINANCIAL EXPRESS



# NAVEEN P SINGH, **RANJITH PC & BHAWNA ANAND**

Authors are with the ICAR-National Institute of Agricultural Economics and Policy Research, New Delhi. Views are personal

# Strengthening agriculture, building India

As Indian agriculture is now on the cusp of a major transition, accelerating growth rate, a strong institutional mechanism and sustainable reforms along with affirmative action in states under crisis are prerequisite for building rural India

NDIAN AGRICULTURE IS now at a crossroads, miserably failing to ensure strong livelihood for 60% of its dependants. The steadily decreasing growth rate and slowly fading reforms in recent years, coupled with unprecedented climate variability, are posing a new set of challenges to feed the growing population in the coming years. The spiral of flood and droughts in key food-producing states in recent times gives a clear message to build climate-resilient farms, and thereby farmers. As the food-producing states account for a sizeable population and foodgrain production, pragmatic steps and affirmative actions are a dire necessity. Nevertheless, the current set of enabling environment for reforms on price, market and institutions is adequate and capable to achieve the sustainable growth rate and place the economy on a growth path, provided the right strategy and institutions are on the ground, while also giving space and time to a bottom-up approach.

# Visible signs

Extreme weather and climatic events in the Indian subcontinent are gradually mutating to new regions and states. According to the Economic Survey 2018-19, currently India incurs losses of about \$9-10 billion (about Rs 62,000 crore) annually due to extreme weather events. Series of floods in 2019 affected over nine states, perhaps the highest number in single year, and even extended to dry and deserted farming regions. There is also a threefold rise in widespread extreme rainfall events in the past 65 years, across central and northern India, where the region accounts for nearly half of the nation's food production and farming people, but their lower level of adoption and mitigation to extreme events may lead to colossal losses in the future. In addition, nearly 30% of land

area has been degraded through deforestation, over-cultivation, soil erosion and depletion of wetlands, amounting to a loss of 2.5% of GDP annually. Further, poor soil fertility status owing to nonjudicious use (of water, fertiliser, etc) in the Green Revolution region is raising sustainability and food security concerns, necessitating an immediate redressal of several constraints.

Furthermore, the ecosystems of various types in recent times are slowly degenerating. The forest and tree cover, which, according to the National Forest Policy (1988) and the draft National Forest Policy (2018), should be around one-third of the total area, is not even one-fourth at present. The National Agriculture Policy (2000) has also advocated encouraging farm forestry, block forest, village wood lots and others, but the current share of agroforestry system stands at 3.39% of the geographical area. The taskforce of the erstwhile Planning Commission, 2001, assessed that the implementation of agroforestry system in the rainfed area will help in poverty alleviation of 30 million people. As forest and surrounding ecosystems are critical for the onset of monsoon and precipitation, there is a demand for concerted efforts for better management, besides seedling distribution to the existing agroforestry systems.

Effective institution and policy

Institution and policy are key elements to connect the ground realities to the people. The right mix of technology and clear perception of the past experience would help to better leverage these elements in a more effective manner. First, the 'integrated approach' by fortifying institutions (such as Krishi Vigyan Kendras, Rythu Kendras, and key NGOs, etc) that are at the frontline of farm service. For instance, improvement in irrigation infrastructure that stabilises agricultural production and sustainable agri-food system, while also increasing scope to diversify our agri-food systems; improvement in logistics to combat uneven price spread and volatility; and crack on cartelisation in the market that ensures remunerative prices to farm produce and affordability to consumers. The second is to establish demand-driven institutions, such as National Agriculture Disaster Authority, an agency to streamline drought/flood declaration and claims which are often ignored and reflected in price spike and distress sale. Further, disconnect of agricultural policies (both at the Centre and state levels)

has warranted reforms to resolve farm

distress. Therefore, policy paradigm at various levels needs to take cognisance of evidence-based research findings to alleviate farm distress. The third is to establish agri centres/service in embassies amongst key countries importing agriproducts to ameliorate global supply chain in order to suck up excess farm supply and harness comparative advantage in niche segments. Time is now ripe to create a Foreign Agriculture Service (FAS) that would help to better leverage and place farm dependants and their products aided by APEDA (Agricultural & Processed Food Products Export Development Authority). The model of FAS can take cues from the USDA (United States Department of Agriculture). Fourth, strengthening the real-time delivery of risk-management tools and interventions like insurance, MSP, price stabilisation fund (uptick in allocation, creation of price-risk management fund), future market and contract farming, which, in turn, can increase propensity to save and invest in farm operations. The last is that public investment, which is the main source for agricultural growth, is slowly decreasing—it currently stands at 17%, compared to 33% in 1985. It is evident from empirical studies that when public investment grew just by 1% during 1991-2005, agricultural GDP grew by almost 2.7%. When investment increased in the subsequent period (2006-17) by 3%, GDP growth raised to 3.3%. Increased incidence of extreme natural events weakens the farm infrastructure in rural areas, which further accentuates climate vulnerability. Therefore, rise in public investment is a dire need when the goal of doubling farmers' incomes is nearing, whilst absorbing such shocks of natural events in the com-

ILLUSTRATION: ROHNIT PHORE

Agri reforms in recent times are often touted as old wine in a new bottle, with less capacity to heal farm distress. Indeed, reforms in the recent years are modest and most convincing to stakeholders, but failed to tide over uncertainties of natural events. Time is right to put agriculture on the Concurrent List (if not completely then partially), so that missing dots in policy adoption and translation may be connected in order to streamline micro-level policy interventions and macro institutions. As Indian agriculture is now on the cusp of a major transition, accelerating growth rate, a strong institutional mechanism and sustainable reforms along with affirmative action in states under crisis are prerequisite for building rural India.

● IS LIBRA DOOMED?

# The Zuck Buck ruck

Facebook's planned digital currency has had a miserable few months

NJUNE 18, Facebook announced Libra, a new global payments system and currency, to be launched in 2020. Dubbed the "Zuck Buck" by Brad Sherman, an American congressman, the plan was to employ a mix of entrepreneurial daring and the technology underlying cryptocurrencies to shake up the world's financial systems. Money would move at the speed of a smartphone-swipe, even across borders. Libra would lubricate life in the rich world and revolutionise it in poor countries, where basic financial services are dear and often scarce. After all, as the firm points out, 1.7 billion people have no access to a bank account. Besides further expanding Facebook's empire, Libra would bring them into the financial fold.

In the subsequent four months, Libra has had a bruising time. Many of its partner firms have got cold feet. Politicians and regulators around the world have made disapproving noises. On October 23, Mark Zuckerberg, Facebook's boss, spent a lonely few hours in Washington, DC, fielding mostly hostile questions from American politicians on the House of Representatives Financial Services Committee.

One problem, as Mr Zuckerberg admitted, is Facebook itself. Maxine Waters, the Californian Democrat who chairs the committee, began proceedings with a litany of its misdeeds, pointing out that it is subject to antitrust investigations in 47 states, that Russia has used it to meddle in American elections, and that it has been fined \$5 billion for deceiving consumers. Nydia Velázquez, a Democrat from New York, accused Mr Zuckerberg of lying to European reg-

ulators over the firm's merging of user data from WhatsApp, a messaging service bought by Facebook in 2014, with those from the rest of the company. Why, the congress woman wondered, should a firm like that be trusted with something as important as a currency?

Mr Zuckerberg pointed out that Libra would be administered not by Facebook, but by the Libra Association, an independent body that includes other companies and is based in Switzerland. But the association is already not what it was. Of the 28 original members, a

and Italy have already said they may block Libra; ministers in India, which has more than half a billion internet users, have been unenthusiastic too

France, Germany

quarter have left. PayPal, an online-payments firm, departed on October 4. A week later eBay, Mastercard, Mercado Pago, Stripe and Visa—another group of payment firms—jumped ship, as did Booking Holdings, a travel company. PayU, a Dutch firm, is the only payments firm still in the association. Other remainers include two ride-hailing firms (Uber and Lyft), a pair of telecoms companies (Iliad and Vodafone), a gaggle of venture capitalists and a handful of charities. The association's head of product, Simon Morris, left in August.

Other questions concerned users' privacy and Libra's potential attractiveness to money-launderers. Mr Zuckerberg promised that Libra would not launch until it had permission from America's alphabet soup of financial regulators. But for a currency with global ambitions, placating the Americans will not suffice. France, Germany and Italy have already said they may block Libra; ministers in India, which has more than half a billion internet users, have been unenthusiastic too. Facebook has said that, unlike most cryptocurrencies, Libra will be backed by a basket of assets, including currencies and government bonds.

A report by the G7, a rich-country club, nevertheless said that Libra, if widely adopted, could pose a risk to the global financial system and should not go ahead until it could be proved safe. That Libra has been described as a cryptocurrency (exactly how it would work remains unclear) will not have helped: regulators are well aware of cryptocurrencies' reputation for scams and shady dealing.

Still, positive thinking is the order of the day, at least in public. Mr Zuckerberg talked at length about the value of innovation, and Libra's potential to spread freedom and democracy around the world. After the defections from the Libra Association earlier in the month David Marcus, the Facebook employee leading the initiative, tweeted that "in a way, it's liberating". Perhaps. But Facebook may hope there is not too much more liberation to come.

THE ECONOMIST

# HIGHLY SENSITIVE PEOPLE

#### LBERT EINSTEIN, Nicole Kidman, Jim Hallowes (founder of HighlySensitivePeople.com), Greta Garbo, Katharine Hepburn, Spencer Tracy, Judy Garland and Martin Luther King Jr are some famous personalities known as highly sensitive people (HSP). It is worth noting that HSP account for 15-20% of the population who are highly creative and brilliant. The people mentioned above are great artists, actors, scientists, social reformers, etc. Sensitive people have depth in thinking and, therefore, take their work seriously; their nervous systems are finetuned, therefore they outstand whatever task they have at hand.

Dr Elaine Aron, a clinical psychologist, coined the term "highly sensitive" in her 1996 book "The Highly Sensitive Person". She explains that high sensitivity, or sensory processing sensitivity (SPS), is an inherited, genetic trait that affects approximately 20% of the world's population. HSPs have a sensitive nervous system, so they absorb and process more information than average, and they ponder on it more deeply. This trait is often mistaken for being introvert and highly emotional, standoffish, insecure, apprehensive, neurotics, depressed, etc. A study by Dr Aron shows that high sensitivity of a person is misunderstood as his/her weakness, but the fact is that HSPs are highly capable, diligent and aware people, who are just more accustomed to their environment and others' feelings than most people.

# Why HSPs are a boon to humanity

They have an entirely different approach to their physical environment, and that is not a weakness, but a strength



The author is a management thinker and blogger

HSPs are empathetic by nature. It's just that they are biologically-wired differently. They have an entirely different approach to their physical environment, and that is not a weakness, but a strength.

They are highly intuitive: Although this may be a rephrase of his thoughts on the subject, Einstein has been widely quoted as having said: "The intuitive mind is a sacred gift and the rational mind is a faithful servant." We have created a society that honours the servant and has forgotten the gift. In my opinion, even Steve Jobs was HSP. The co-founder of Apple had said

that he believed intuitive heart leads to success. The opposition to Einstein's landmark theory of relativity in the 1920s was unprecedented and extremely fierce, but the physicist followed his instinct and stood by his work. Einstein's general theory of relativity is now renowned as a pinnacle of modern-day physics.

They are shy and prefer to withdraw **from the crowd:** These sensitive people jump to help people easily because they understand needs of people easily. The "King of Late Night" television show host Johnny Carson was in total control during



his shows, but once he stepped away from the spotlight, he was shy and aloof. Carson rarely gave interviews and remained a very private man, despite his public persona. He once revealed, "I can get in front of an audience and be in control ... backstage, I'm aloof because I'm not very comfortable."

HSPs have a different approach to their physical environment: Being considerate and well-mannered, HSPs tend to get affected when someone is not. They are detail-oriented and notice things others may miss. In addition, they are gifted, they can read people well, and know when they

are lying or deceiving. The tone, pauses, body languages are all clues that they easily catch. They get stressed with overthinking, which leads to low immunity, which may result in frequent cough and cold. They don't like anything in exaggeration; they don't like to be in large groups, too many lights, strong smells, loud noise. They are not party persons. A lot depends on how they feel. With incredible intuition, they work according to their gut feeling.

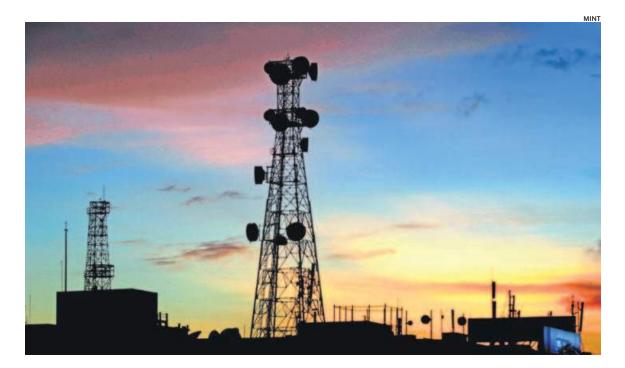
They are more expressive in their relationships: HSPs crave for deep connections. According to Dr Aron's research, sensitive people tend to get bored in marriage than non-sensitive people, mostly due to the lack of meaningful interaction Dr Aron adds that HSPs tend to withdraw from a relationship that lacks meaning and involvement. They look for meaningfulness in all that they do in life. The key to a successful relationship for an HSP is communicating what they want out of a relationship, and finding a partner who understands their emotions. "Sensitive people can't help but express what they're feeling," says Dr Aron.

They are a boon to the society: People often react adversely or get reticent around HSPs. What they don't realise is that the extremely sensitive person is vulnerable because he/she is hurt in the past Many feel that such people are fragile and unable to handle themselves, but they have their own reasons for behaving the way they do. At such times, it is best to give them space to analyse the situation and get a hold of themselves.

SPS (HSP) is not a condition, a disorder, or a diagnosis. It is a neutral trait evolved in 20% of the human population and many non-human species as well. HSPs process stimuli deeply due to a biological difference in their nervous system. As a result, they easily get overwhelmed and often need more self-care than others.

If you are an HSP, be proud because you're alive in every sense of this word in this wildly beautiful world. Sensitivity is your strength. Keep soaking in the light and spreading it to others.

epaper. financia press.com



# A call for the Centre to foster competition

Now that the apex court has lumped the telecom industry with a back-breaking liability, fears have arisen of a drop in market rivalry. But there may yet be a way to ease the burden

y upholding the view that all revenue accruing to telecom companies be used as a base for determining the portion they need to share with the government as licence fee, the Supreme Court last week appears to have delivered a crushing blow to an industry teetering under a mountain of debt piled up to purchase spectrum at exorbitant prices and roll out some of the cheapest cellular services to be found anywhere in the world. The additional liability of ₹1.3 trillion on account of the revised licence fee, accumulated penalties and spectrum usage charges, all included, could fundamentally alter the scope of competition among Indian cellular service providers that have accumulated, by some accounts, ₹7 trillion in debt, principally to pay for radio frequencies won in auctions. The government, on its part, is mindful of earlier judicial interventions in an allocation policy that once ran the risk of underpricing this scarce natural resource. Various approaches have been tried and the settled view is that the most transparent way to allot spectrum is through a bidding process. Telecom policy, however, cannot afford to be oblivious to the role competitive intensity plays in the development of a sector that is vital to India's transition to a digital economy. An insistence that even the returns earned by a telecom firm on its investments need to be shared with the Centre, unfortunately, hobbles almost every player's ability to compete.

India started out by clubbing cellular licences with spectrum for a flat fee. When this approach showed limitations, policymakers switched to a charge per subscriber, which proved way too high, and eventually, to a revenue-sharing model that allowed cheap services

to fan out across India. This arrangement grew contentious as spectrum pricing increasingly dissociated itself from licence obligations and it became clearer to regulators that onerous charges for permission to provide telecom services were counter-productive. The current policy iteration has come a long way in unbundling radio frequencies and licences, and the way forward appears to be to keep the latter purely as a regulatory measure. As telecom services tend towards universal availability, the concept of a licence fee becomes anachronistic and penalties for delivery failure acquire greater salience. The apex court's ruling could trigger a response that hastens the process of splitting policy into a pricing mechanism for spectrum and an unpriced permission to operate. That would be in line with telecom regulation in several countries.

India has deepened its telecom penetration vastly since the early 1990s to become the world's second-biggest market by subscribers. The learning curve has been steep, both because of the disruptive nature of technologies in this industry, as well as the strong regulatory reflex of Indian policymakers. Complications arise because the entire market is not at the cutting edge of technology: Every second call in the country today is made from a basic handset on cellular networks that are two or three generations older than the latest system available. As our policy challenges shift from enabling digital access to increasing consumption, we need to ensure that the market witnesses sufficient rivalry. Perhaps the government could waive the interest and penalty part of the arrears, refine its policy mix to lower other costs, and aid that cause. In this sector, more than anywhere else, a generous policy stance would serve us well.

## MY VIEW | BARE TALK

# A policy agenda to meet India's steep employment challenges

We must enable small businesses to grow since these hold the greatest potential for job creation



are co-authors of 'The Rise of Finance: Causes, Consequences and Cures

s India battles an economic slow down and myriad other associated problems, attention is bound to be deflected from the everpresent priority of job creation for the country's youth bulge. There was cheerful news from India's factories sector in the recently released Annual Survey of Industries for 2017-18.

Job creation in the sector has been steady, if not spectacular. The number of workers employed grew 4.8% in 2017-18. Total people engaged (including managers) rose 4.7%, the highest in four years. Promising as this is, the sheer magnitude of job creation required for young Indians to enjoy a life of dignity means that millions of them must become job providers rather than swell the ranks of job-seekers.

In the years after independence, India's traditional industrial policy was built around three pillars-concessional  $credit, fiscal \, incentives \, and \, input$ subsidies. However, a growing body of research has upended this conventional wisdom and shown that the predominant source of job creation is firms that start small and formal, and eventually grow into medium-scale enterprises. In doing so, they reveal an alternative path to generating productive jobs in India. This is not to overlook the value of large firms, but only to highlight the disproportionate importance of startups in job creation. Some of the findings are

particularly relevant.

One, although micro businesses dominate most countries' economies, India's economy has an excessive proportion of less productive, informal micro businesses. Two, employment in India is concentrated in these micro businesses, whereas in developed countries, it is concentrated in formal small and medium-sized firms. Three, productive jobs are created by firms that start out as formal. Four, new and young firms create more jobs than older, established firms. Five, growing and efficient firms are founded and run by educated entrepreneurs. Six, with age, Indian firms typically stagnate or decline in employment. Seven, India has a deficit of productive, job-creating entrepreneurs, and an excess of informal entrepreneurs focused on survival.

These findings suggest that government policies on micro, small and medium enterprises (MSMEs) must become more nuanced. Informal micro enterprises and single-person enterprises run by those lacking formal education should be termed "subsistence enterprises". The government would then be under an obligation to support them with basic public goods, including education and a robust social safety net. Educating the next generation is critical to breaking the iron grip of poverty and pulling single-person enterprises out of survival mode. However, support to these subsistence enterprises should be provided under anti-poverty measures and not under an economic development programme (much less under productive job-creation measures).

In general, the government's perception of entrepreneurship as a viable solution to the lack of employment options is well-founded. International evidence is supportive of this: Startups and young firms create more jobs regardless of their size, and educated entrepreneurs have a far higher probability of success. Therefore, public policy to support entrepreneurship and MSMEs should target these entrepre

neurs. However, any government support should be made contingent on the enterprise's progress in creating jobs and productive growth, thereby encouraging truly dynamic entrepreneurship.

To enhance the productivity of businesses and promote growth, the government should subsidise the provision of management support services—as industrial public goods—to young businesses. A nascent initiative in South Tamil Nadu shows that huge productivity gains are waiting to be unlocked in small businesses if entrepreneurs are made to understand the importance of some critical principles and concepts related to finance and human resources Moreover, as education plays a big role in the growth of startups and their contribution to employment generation, institutions of higher learning should prepare students to be entrepreneurs in the same way that they equip them with functional, marketable skills.

The government should also periodically update the definitions of MSMEs to bring them closer to international standards. This will help ensure that businesses are not prematurely labelled as large and are not denied government support while still in need of it.

Finally, internalising the most important principle of public policy—if you cannot help, at least do not hurt—is the first thing the government can do to support entrepreneurs. It is a lot easier for governments to impede economic activity than to foster it. The difficulty in arresting and reversing the current narrative of an economic slide is a case in point. Just avoiding doing the wrong thing will obviate the need for the government to support the economy actively later. In other words, not getting in the way may be the most important policy intervention that any government anywhere could undertake.

This piece is based on the authors' working paper, 'India's quest for jobs—a policy agenda', published by Carnegie India earlier this month

## 10 PEAKS AGO



The economy

seems to be in a

state of limbo,

a recovery

from which

calls for a bold

market embrace

The moment you make a mistake in pricing, you're eating into your reputation or your profits.

KATHARINE PAINE

MY VIEW | THE IMPARTIAL SPECTATOR

# Reality must catch up with all the rhetoric on reforms

SHRUTI RAJAGOPALAN



with the Mercatus Center at George Mason University, US

he state of the Indian economy has been described in rather depressing terms lately. There are debates over whether India is experiencing a structural slowdown, a cyclical slowdown, a U-shaped or V-shaped recession, or no slowdown at all and simply a bump in the road. It is difficult to be objective when the numbers are suspect, and Indian growth numbers hardly inspire confidence. But there is another way to describe the state of the economy—that it is in limbo. It feels like everyone is waiting for something to happen, for the other shoe to drop, or for the government to unshackle India's potential.

What is odd about this limbo is that it is caused by a peculiar kind of regime uncertainty. Other countries are currently experiencing some form of that phenomenonlike the possibility of a presidential impeachment in the US, or a far more severe version caused by an endlessly prolonged Brexit in the UK. India is not experiencing any of the usual causes of regime uncertainty in terms of elections, treaty negotiations, possibility of war etc., but the consequences of the lack of a clear economic vision

This limbo has been induced by a gap between the state narrative and actual action. Prime Minister Narendra Modi left no stone unturned in going to various Indian and foreign platforms, declaring India open for business and encouraging investors to invest in India. Yet, the rhetoric has not been followed by meaningful reforms. One would think that such grandstanding was relatively harmless even if followed by inaction. This would be true for most leaders. But Modi is a master at creating narratives and instilling faith because of his personal integrity and discipline. This leads individuals and firms to form expectations not just of his intent. but also his governance. When those expectations are unmet, however, they revise their beliefs and wait for credible signals of actual

Why is limbo a bad thing? For two reasons. First, it makes individuals and firms wait and put off decisions for a later time. They are waiting to understand the nature of reforms, especially in factor markets, before they make investments. For example, an expectation that the government will systematically reform labour regulations to

reduce the relative cost of capital to labour would cause firms to invest in projects that are labour intensive. Alternatively, if the government was expected to tighten labour regulations, then firms might choose capital-intensive, labour-replacing equipment. In the absence of clear expectations and a | tion in the absence of a clear economic

good understanding of the government's vision, businesses would simply postpone investments.

A second consequence is that while waiting for certainty on the broad economic situation, firms may engage in rent-seeking. The recent turn of the government towards providing sectoral relief during the economic downturn encourages many firms waiting for clarity to take their chances in the politi-

cal churn to seek temporary benefits in the form of sops, tax breaks and subsidies. Sectoral-policy tinkering by the government leads to rent-seeking behaviour among businesses, but cannot unleash growth and innovation.

In either case, whether it is firms waiting

for reforms or tiding over the downturn with all the help they can get, they are waiting for the government's next move

But, oddly, it is not just businesses that are waiting for the government's signals. Even the bureaucracy seems paralyzed into inac-

> vision. Files seem to be piling up, and businesses complain that orders and clearances are just not moving along. This could be because bureaucrats are unsure which moves will be rewarded and which ones punished. And with the government coming down hard on corruption. they would face complicated decisions.

> Almost every economist has called for the second stage of economic reforms,

echoed almost daily by intellectuals and columnists in India, and also the foreign press. While they might disagree on the exact nature of reforms, everyone agrees that a strong and credible signal from the government is urgently required

Since 2014, Modi had styled himself as a

nationalistic economic reformer. But after his 2014 victory, at the first and slightest hint of trouble with a reform of India's land acquisition process, the government developed cold feet and called the whole thing off. The one major reform that the government did push through was the botched-up goods and services tax (GST), which may have had the opposite effect of what was intended. In this year's general election campaign, Modi may have presented himself as more of a nationalist than an economic reformer, but that does not leave reforms off the agenda.

Acts of commission such as demonetization and faulty GST implementation have hurt the economy. But what is less known and appreciated is how acts of omission, in terms of liberalizing the economy, are being picked up and punished by market.

No single individual or government can be blamed for the state of an entire economy. But the economy may not have found itself in limbo had the reality been in line with the government's rhetoric on reforms. Narrative-building alone cannot change our economic circumstances.

Only big, bold and market-embracing reforms—especially liberalizing the markets for land and labour, and streamlining GST– will help.

MY VIEW | A VISIBLE HAND

# A better picked arrow from the quiver may have found its mark

Sharper weapons are needed to spur demand and reverse India's economic slowdown than a corporate tax rate reduction



is chairman, InKlude Labs. Read Naranyan's Mint columns at : www.livemint.com/ avisiblehand

n late September, Union finance minister
Nirmala Sitharaman in a surprise move
slashed the effective corporate tax rate for
Indian companies from about 35% to 25%,
with a reduction to 22% for those not using any
other incentives. In one quick step, Indian corporate tax rates had moved from the highest decile
of big countries to a little below the average. The
move was widely hailed as a bold supply-side
reform and markets cheered on the day.

This column peels the corporate tax onion and puts it back together in an attempt to unpack what it really means. Before a comparative tour of corporate taxes around the world, let's remind ourselves of what corporate taxes are all about. A cor $porate\ tax\ is\ a\ direct\ levy\ placed\ on\ a\ firm's\ profit$ by the government. In most jurisdictions, this tax applies to corporations, but not partnerships or proprietorships, where the income passes through to the income of the individual in whose hands it is taxed. Corporate tax is also most often applied to net profit; that is, the income net of the expenditure incurred to generate it. Additionally, in most jurisdictions, dividends are taxed on distribution by the corporation and/or in the hands of the individual receiving it, making corporate tax an "inefficient" tax in economic terms.

The idea of corporate taxes gained steam only with the gradual rise of the limited-liability joint stock company in the early 20th century. Famous companies from an earlier era, such as Carnegie Steel and Standard Oil in the United States, were formed as trusts and not as corporations. In the US, the first corporate income tax rate of 1% was introduced by tax legislation in 1909. This rate slowly rose to 53% in 1968, at the height of the Vietnam War. The rate has been coming down since the famous supply-side cuts of US President Ronald Reagan that began in 1980, and have reached a low of 21% under the Trump Tax Act of 2017. The UK followed a different path, taxing corporations at the same rate as individuals until 1965, when a corporate tax regime starting at 45% was introduced. Generally speaking, corporate tax rates around the world were the highest during the late 1960s and early 1970s, and have been steadily declining since then. The average 2018 corporate tax around the world was 23.03%, while the number weighted by gross domestic product (GDP) was 26.47%. Among large countries, France (34.4%) and Brazil (34%) have corporate tax rates above 30%

There has been much academic discussion about corporate taxes, with an emphasis on the question of who bears their burden. Despite empirical research and active discussion, academics remain divided. The pioneering academic paper on this topic was written by Arnold Harberger in 1962. Harberger evaluated whether capital, labour or the consumer bears the burden.



Using a theoretical framework, he argued at the time that almost the entire burden of corporate taxes falls on capital. The corollary implication is that any reduction in corporate tax disproportionately benefits capital providers. This increased return on capital could, in turn, trigger greater domestic and foreign investment, stronger research and development, or substitution of labour for capital. Mooji and Ederveen (2005), using a meta-analysis approach, studied the response of foreign direct investment (FDI) to corporate tax in a European Union context and concluded that a reduction in corporate taxes would increase FDI. As a consequence, the EU has among the lowest corporate taxes in the world. Post-globalization, Harberger revisited his analysis in 1995 and 2008, and concluded that in a world of open borders, labour productivity does indeed increase with a reduced corporate tax burden, but does so with a time lag. Academics over the last decade have discussed-empirically and theoretically—corporate tax in an open economy and under conditions where the benefits from lower taxation are negotiated between capital and labour through wage-bargaining methods.

The simplified conclusion from various economic analyses is that owners of firms, workers and consumers, all benefit from a corporate tax

reduction. Though no such study to my knowledge has been conducted in India, one might postulate based on evidence from elsewhere that the immediate benefits would go to capital providers and only subsequent gains would accrue to workers and consumers. The implications of this are quite remarkable. While this year's cuts do qualify as a radical reform, the demand-boosting impact on account of gains for employees and consumers in the midst of an economic slowdown may take a while coming. Metaphorically speaking, this is akin to improving the nutrition of a patient in an intensity against the statement.

intensive care unit.

A corporate tax reduction in the midst of an economic slowdown is an unusual reform. Most often, such tax rates are reduced as a result of ideological persuasion (Reagan and Margaret Thatcher) or to keep an expansion going (the 2017 Tax Act in the US). A direct reduction of individual income taxes would have provided a clearer demand boost, but the recent budget opted for a soak-the-rich income tax policy instead. It appears that the government is selecting its weapon of choice randomly from a quiver of arrows. A better carefully choreographed set of actions is more likely to find its mark in both the short- and the long-term.

P.S: "Business doesn't pay taxes, it collects taxes," said Ronald Reagan.

# GLOBAL VOICES

#### Cambodia's strongman arm-twists democracy

un sen, the authoritarian prime minister of Cambodia, is worried, and is using every trick in the book to threaten Sam Rainsy of the banned opposition Cambodia National Rescue Party, who plans to return to Cambodia from exile on Nov. 9. Mr. Hun Sen dominates parliament and politics—his ruling party won all 125 seats in parliament in the 2018 election—but still shows signs of insecurity over the return of Rainsy, an exponent of democracy, returning for the first time in four years. Rainsy's supporters have been flashing a nine-fingers sign to mark the date. The prime minister told students during remarks at a recent graduation ceremony, "Don't ever join the nine-fingers campaign. If you dare do it, you should have one of your remaining fingers cut off." Speaking of Rainsy, he added, "It is a plot to carry out a coup d'etat, for regime change! Millions of people and armed forces are waiting for you on November 9. Your head is not made from iron."

Since Rainsy's return was announced in August, Cambodian authorities have launched a fresh crackdown on members of the outlawed party. More than 50 have been charged with crimes, and 31 have been jailed, according to Human Rights Watch... Ideally, Rainsy's return should be an opportunity to breathe some competition into the political scene. Hun Sen prefers "democracy" in which voters have only one choice.

The Washington Post

#### Restore confidence in a failing system

A re England's 1.3 million children with special educational needs and disabilities—which range from dyslexia through to severe medical conditions—being failed by the reforms introduced by the Conservative education secretary Michael Gove in 2014? In a long-awaited report, the Commons education select committee, chaired by the Tory MP, Robert Halfon, concludes in damning terms that they are. In their report, the MPs say that "the 2014 reforms have resulted in confusion and, at times, unlawful practice, bureaucratic nightmares, buck-passing and a lack of accountability, strained resources and adversarial experiences."

The issue has risen up the political agenda, with thousands earlier this year protesting about cuts, as government funding failed to keep pace with soaring demand for additional support required for children with Send [special educational needs or disabilities]... England must move to a less confrontational system... The system needs to be more responsive and simpler to access. It would be better to have one standard application form for all councils, which would be easier for parents and schools to navigate. Even if parents win the argument eventually, the children will suffer first. The urgent need is to restore confidence all round.

The Guardian,UK

#### A revealing ride by Kim Jong Un

The iconography of leadership generally has two purposes: to [legitimize] and validate the authority of a person, and to unite a country behind that person in a single national purpose. Imagery assumes particular significance at moments of national stress, which is why considerable attention has been paid to recent photos of North Korean despot Kim Jong Un charging up Mount Paektu, a mountain of symbolic importance for the Korean people, on a white horse. The pictures were consistent with that government's adulatory propaganda, but experts warn that they could anticipate a bold move from Kim that could have profound consequences for the region.

If North Koreans needed reminding of the significance of the images, Rodong Sinmun, the country's national newspaper, obliged. It explained that Kim's charge showed his "unwavering resolve and willpower to defend the dignity and destiny of the nation and the people without vacillating under any threat or temptation." Kim reportedly visits the mountain whenever he faces important decisions. Ominously, it suggested that Kim was "making a solemn declaration of history." The photos likely anticipate a move by Kim to break the stalemate in nuclear talks with the United States and force Washington, along with the rest of the world, to take notice of North Korea and treat it accordingly.

The Japan Times

### Remove hurdles to business activity

K orea's 2 percent growth this year, regarded as a psychological Maginot Line of its economy, looms as a long shot. According to the Bank of Korea, Korea's real gross domestic product grew only 0.4 percent in the third quarter from the previous quarter. The central bank estimates the Korean economy must grow at least 0.97 percent on-quarter in the October-December period to reach the 2 percent target. But given tough economic situations at home and abroad, it is hard to expect a strong boost in the fourth quarter. Exports, a major propeller of Korea's economic growth, are on a 10-month skid from December last year. External conditions have not improved prominently yet.

Even though the world economy is slowing down and low growth is understood as a common phenomenon for developed countries, Korea's stunted growth this year is particularly concerning in view of the absence of severe external shocks of the kind that Korea experienced four times. The Korean economy contracted 0.4 percent in the first quarter, rebounded with 1.0 percent growth in the second, but lost steam in the third. Second-quarter growth was driven largely by government spending... The best way to spur growth lies in the private sector. Companies must be encouraged to invest more and employ more. The first job for the government should be to remove hurdles to their business activities.

The Korea Herald

## MY VIEW | IT MATTERS

# Phage therapy could arm the world against superbugs

SIDDHARTH PAI



is founder of Siana Capital, a venture fund management company focused on tech and science

have written in this column before about the use of big data techniques to find a new class of antibiotics that can deal with superbugs. Superbugs are bacteria that have become immune to existing antibiotics. The over-prescription of antibiotics and their wide use in poultry, fish, and meat farms means that bacteria have had a chance to mutate and become resistant to many antibiotics. To add to this, we are using old ammunition. The last useful class of antibiotics now in use, fluoroquinolone, was discovered in 1962, about 60 years ago.

Antibiotic cocktails that are used to treat

Antibiotic cocktails that are used to treat superbugs do exist. They are used sparingly and only as a last resort. The irony here is that whether the patient lives or dies, he or she will not end up being a repeat user. As a result, drug companies pour very little of their resources into the discovery of such drugs, as the economic returns from finding a super class of antibiotics simply do not outweigh the costs. Meanwhile, estimates put the number of deaths because of superbugs

at more than one million a year, which is likely to grow to 10 million by 2050. That is one death every three seconds. It's time for action, but if big pharma stays away, this action will lie in the realm of start-ups.

Many start-ups are using the explosion in big data and computing power to run complicated algorithms that may eventually provide a breakthrough. The use of big data by startups dealing with this problem can broadly be classified into three types. The first lies in the simple but effective mapping of disease patterns within a geography and various sets of people among its population. The second is the use of computational algorithms to presage a scientific molecular level discovery, which is what most new superbug antibiotic development startups are attempting. They use these algorithms in their quest to design a chemistry-based solution that will allow for the isolation of certain proteins in the bacterium, which when disintegrated by a chemical substance, will kill the bacterium. The third technique is to use genomics, which studies how harmful bacteria have changed in response to antibiotic use, and use this new-found knowledge to arrive at changes in genomic sequencing to

kill the resistant bacteria.

However, the fight against superbugs

can't be won by IT alone. I recently met Dr. Steffanie Strathdee, a chaired professor at the department of medicine at the University of California in San Diego (UCSD). Strathdee is an expert on global health, and apart from her name-endowed professorship at UCSD, is also the associate dean of its department of medicine.

Strathdee recounted an intensely personal experience with superbugs, which caused her to start a new line of research. Her husband had been slipping in and out of a coma for two months brought on by a superbug and the doctors had said there was nothing they could do.

Strathdee reached back to her early college training where she had learnt about 'phages' or viruses

that attack and kill bacterial cells, a process called 'phage therapy'. Phages were discovered more than 100 years ago by a French-Canadian microbiologist Félix d'Herelle. They were in regular use in the Soviet Union and the Eastern bloc as a treatment protocol. However, the Cold War allowed pharmaceutical purveyors in the West to ignore these therapeutic discoveries for many years. The political climate was conducive, as collaboration of Russia and the Eastern bloc with the West was minimal.

There are trillions of phases on the planet

There are trillions of phages on the planet that have evolved over millennia to become

A phage is a kind

of virus that

can enter a

bacterium,

multiply, and

thus kill its host

from within

the perfect predators of bacteria. The phage latches on to and enters the bacterium, and once that is done, proceeds to take over its machinery and turn it into a kind of phage-manufacturing plant. The newlyminted phages then burst out and the bacterial cell dies. To work, phages have to be matched to the bacterial infection.

Strathdee decided to ask for help, which was forthcoming from labs in Russia, witzerland and even India,

the US Navy, Switzerland and even India, among others, and sourced viruses of eight different strains that were known to be phages of *Acinetobacter baumannii*, nicknamed Iraqibacter. She then injected billions of these phages into her husband Tom Patter-

son, another scientist at UCSD.

Patterson recovered as a result of her lastditch effort. After his case was publicized, people contacted Strathdee from all over the world wanting phage therapy. Strangers had helped her and she felt she had an obligation to help them. Strathdee hasn't always been successful, though, because she was contacted too late in several instances. She says the Food and Drug Administration of the US is now making it easier for people to get phage therapy earlier in the course of their infections.

Strathdee says that what is needed now are clinical trials to see if this line of therapy works on a broader scale. Strathdee says if she can use this method for one man, then why not for the entire planet? She hopes to create a library of phages or a giant phage bank with specific phage cocktails for many mutations of superbugs. She is on a quest to raise funding to do so.

After Strathdee's success, she and her husband have now written a book, *The Perfect Predator (bit.ly/3686VyB)*. The story is so fascinating that she has already been able to sell its movie rights. She also gives talks on her experience and what she has been doing to regularise phage treatment. She is scheduled to speak at India International Centre, New Delhi, this month, for example.

# WORDLY WISE

"THERE IS MORE REFRESHMENT AND STIMULATION IN A NAP, EVEN OF THE BRIEFEST, THAN IN ALL THE ALCOHOL EVER DISTILLED."—OVID

# **The Indian EXPRESS**

∽ FOUNDED BY ∽ RAMNATH GOENKA

BECAUSE THE TRUTH INVOLVES US ALL

# RED FLAG AT INFOSYS

Questions of corporate governance must be urgently addressed in the interest of investors, and the larger economy

ORE THAN two years after NR Narayana Murthy, a founder of the software services firm Infosys, raised issues of transparency and disclosure and falling standards of governance which led to a conflict between him and the company's board of directors and the exit of its then CEO, Vishal Sikka, fresh governance issues have cropped up. Early this month, the company disclosed that it had received two whistleblower complaints alleging disturbing malpractices, aggressive accounting policies and provision of selective information to the board by the CEO, Salil Parekh, and the CFO, Nilanjan Roy, aimed at boosting its bottomline in the near term. The company's board has responded by bringing into play its internal and external auditors and also drafting external legal support. That has not deterred a few US law firms from filing class-action suits in that country where Infosys American Depository Receipts or ADRs are listed and traded. Reportedly, the US Securities and Exchange Commission, too, plans to seek help from its Indian counterpart, Sebi, highlighting the challenge ahead for what many investors perceive as a bellwether for a new India.

Although it is not yet clear how serious the complaints are, what is surprising is that the disclosure and a statement from the company came only some time after the whistleblower's mail was first received on September 30. That raises more questions on the core issue of disclosure standards, especially for a company that has enjoyed a governance premium for the last couple of decades, something unique in the universe of listed Indian companies. This latest issue of corporate governance featuring a storied Indian firm comes at a time of economic downturn and unravelling of scams involving both promoters and senior managements in some other firms. That could lead to not just greater scrutiny of many corporate firms and value erosion but it could also potentially further undermine investor faith and trust with its impact on capital raising and investment. It is easy to revise corporate governance codes here too like in other jurisdictions and for policymakers and regulators to step in. But as long as large institutional shareholders are found wanting, and in the absence of any major outrage on the part of shareholders, it may be futile to expect insiders or the entrenched set to change.

The famed global investor, Warren Buffet, believes that the best way to get fat cat corporations to change is to embarrass them. He may be right. But as Murthy said in an interview to this paper earlier, it is the responsibility of the rich, powerful and the elite, including corporate leaders, to shore up hope and boost growth. Infosys and corporate India owe it to not just investors and other stakeholders, but also the broader economy.

# TALL TASK AWAITS

In Maharashtra, new government needs to quickly get down to work on the stressed fiscal, farm and climate fronts

NCE THE PULL and tug over power-sharing between the BJP and Shiv Sena subsides, the new government in Maharashtra would do well to take another look at the white paper presented to the state legislature in April 2015 on the health of the state's economy. Blaming the previous Congress-Nationalist Congress Party regime for leaving behind a legacy of alarming debts and deficits, the BJP-Sena government drew up a litany of fiscal sins that it went on to embrace itself, from rank populism to rising revenue expenditure. Revenue deficit, fiscal deficit and debt stock have all grown — to Rs 14,960 crore, Rs 56,053 crore and Rs 4,14,411 crore, respectively. Revenue expenditure in 2018-19 grew to Rs 3,01,460 crore against Rs 2,41,571 crore during 2017-18. Five years ago, the government inherited a debt of over Rs 3 lakh crore, which has grown by about a third in five years, making Maharashtra one of the country's most debt-stressed states. What has worked for the government is the growing GSDP, but it must return to its fiscal vows, broken on account of political exigencies, including increased capital expenditure, while curtailing off-budget borrowings and controlling revenue expenditure. Claims that Maharashtra is the top destination for investment have begun to appear hollow in the face of factory closures and poor job creation.

The other focus area will have to be agriculture and its allied issues of irrigation and climate-resilience in farming. Against a backdrop of promises to double farm incomes, the growth rate in agriculture is pegged at a miserable 0.4 per cent for 2018-19 and farmer suicides have peaked over the last five years. This calls for urgent attention to completing pending irrigation projects and drought-proofing chronically dry regions. A water grid for Marathwada and river-linking schemes have been drawn up, but these should be assessed on parameters of sustainability before they get off the ground. It is the less glamorous projects that need the chief minister's attention, including creation of value chains in agriculture and incentivising sustainable cropping. Amid questions on how effective the showpiece scheme, Jalyukt Shivar, has been, an exhaustive and honest audit of water conservation works will be welcome.

Maharashtra is one of the states where the gravity of climate concerns is clear and present – in August 2019, when Western Maharashtra experienced its worst ever floods that washed out hundreds of acres of standing crop, some regions continued to experience acute water scarcity from a long drought since the winter of 2018. Some climate policies were announced in the first term, including for electric vehicles, clean fuel and sustainable transport systems. The new government will do well to act on some old plans.

# DON'T STOP THE PARTY

Release of high amounts of methane during Oktoberfest raises global warming concerns. Don't worry, there's a neat solution

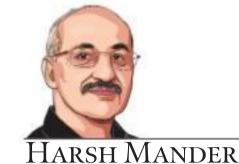
T WAS A conflict waiting to happen. The urgent action required against climate change may have a new target, one which has hardly ever been under fire. Oktoberfest, once a German folk festival, has become something of a global phenomenon. But over the last few years, the millions of gallons of beer, wine and meat consumed are raising eyebrows.

Researchers at the Technical University in Munich found that there is a massive increase of methane into the atmosphere in Munich during the festival, which concluded earlier this month. Methane accounts for about 20 per cent of global heating and is the second-most common greenhouse gas emitted after carbon dioxide. Tracking major sources of GHGs, and addressing the problem they represent, will require social and political initiative. But going after beer and bratwurst could present a conflict of interests, and tastes, for even the most committed environmentalist.

Luckily, a compromise is in the offing, one that fits in neatly with consumerism. The effervescence of beer and the carnivorous joy of a good sausage need not be abandoned, if other steps are taken. The bio-physical consequences of revelry contributed to only 10 per cent of the methane released during Oktoberfest, Poorly made-grills and cylinders, leading to methane leaks, share a larger part of the blame. So, it is likely that by next year, some smart technologies backed by smarter marketing will be selling "methane-free" sausage-cookers and beer-coolers. It's like buying an air purifier but continuing to drive a fuel-guzzling car in oh-so-polluted Delhi. Save the world, as long it's not too much trou-

# National dishonour

We need to ask why India lags behind its



neighbours in combating hunger, malnutrition

There is an urgent

enforceable right to

diagnostics and free

unknown. Yet, India

born in impoverished

policy continues to be

exclusion of farmers

and workers.

requirement for a legally

healthcare, with universal

and free out-patient and

hospital-based care, free

medicines. All of this is not

continues to fail children

households, to homeless

people and single mothers,

and to oppressed castes and

social groups. Our economic

dominated by measures that

support big businesses to the

trapped in an elite capture,

THE ABIDING DISGRACE of new India is that despite unprecedented quantities of wealth and the vulgar ostentation which has become customary in the gaudy glitter of city life, India is unable to overcome hunger and malnourishment. This is even more unconscionable when government warehouses are overflowing with stocks of rotting rice and wheat. The 2019 Global Hunger Index (GHI)

report brings sombre tidings this year: India's

poorer neighbours — Bangladesh, Nepal, and

even Pakistan — have overtaken India in the

battle against hunger.

Hunger is the failure to access the calories that are necessary to sustain an active and healthy life. It results in intense human suffering and indignity, as parents are forced to helplessly watch their children ache as they sleep hungry, as their brains and bodies are unable to grow to full potential, and, as they fall ill too often and are snatched away too early.

This is a colossal national dishonour for two reasons. One, this suffering is entirely preventable. Given appropriate public policies sensitively designed, adequately resourced and effectively implemented — the country has both the wealth and the food stocks many times over to end hunger entirely. The relative success of our neighbours in combating hunger — Nepal emerging from 15 years of civil war and Pakistan still torn by internal conflict — is a sobering reminder of what India has not accomplished. Two, this failure does not spur public outrage and the introspection that it should.

The GHI report ranks India at a lowly 102 out of 117 countries listed. The GHI scores are based on four indicators — undernourishment (the share of population with insufficient calorie intake); child wasting (children with low weight for height, indicating acute undernutrition); child stunting (children with low height for age, reflecting chronic undernutrition); and child mortality (death rate of children under five).

Among all the countries included in the report, India has the highest rate of child wasting (which rose from the 2008-2012 level of 16.5 per cent to 20.8 per cent). Its child stunting rate (at 37.9 per cent) also remains shockingly high.

Bangladesh and Nepal have surged ahead of a much wealthier India. The Bangladesh success story is attributed to pro-poor economic growth raising household incomes as well as significant improvements in "nutritionsensitive" sectors like education, sanitation and health. Nepal, likewise, shows increased household wealth, maternal education, sanitation, health and nutrition programmes. What must India do better to at least keep pace with its South Asian neighbours in tack-

The report is instructive as it explains why

ling hunger? This is the question that Dipa Sinha, Parth Shrimali and I seek to answer in our essay in the latest 2018-19 India Exclusion Report of the Centre for Equity Studies. We observe the cruel irony of the largest

population of food-insecure people being food producers – farm workers, tenants, marginal and small farmers, fish workers and forest gatherers. To end hunger, food producers must be supported to receive adequate remuneration. We recommend sound measures to protect farmer incomes, including income transfers to farmers, minimum support-price guarantees and crop insurance, and a massive expansion of farm credit. For farm workers, a refocus on land reforms is called for, and, a greatly expanded and effectively managed rural employment guarantee programme with attention to land and watershed development, small irrigation and afforestation. There must also be an urgent and comprehensive shift to sustainable agricultural technologies less dependent on irrigation, chemical fertilisers and pesticides, to reverse our agri-ecological crisis.

The other large food-vulnerable population comprises informal workers. Hunger can't be combated without addressing the burgeoning job crisis. It also entails labour reforms which protect job security, fair work conditions and social security of all workers. We also argue that the time has come for an urban employment guarantee programme, to help build basic public services and infrastructure for the urban poor — especially slum and pavement residents, and the homeless. This should also include employment in the care economy, with services for child-care, children and adults with disability and older persons.

The Public Distribution System must be universalised (excluding income tax payees) and should distribute not just cereals but also pulses and edible oils. Further, we need to reimagine it as a decentralised system where a variety of crops are procured and distributed locally. Both pre-school feeding and school meals need adequate budgets, and the meals should be supplemented with nutrient-rich foods such as dairy products, eggs and fruits. Social protection also entails universal pension for persons not covered by formal schemes, universal maternity entitlements to enable all women in informal work to rest and breast-feed their children, a vastly expanded creche scheme, and residential schools for

Malnourishment results not just from inadequate food intakes, but also because food is not absorbed due to frequent infections caused by bad drinking water, poor sanitation and lack of healthcare. India's nutrition failures are also because of persisting gaps in securing potable water to all citizens, and continued open defecation despite optimistic official reporting. There is an urgent requirement for a legally enforceable right to healthcare, with universal and free outpatient and hospital-based care, free diagnostics and free medicines.

homeless children and child workers.

All of this is not unknown. Yet, India continues to fail children born in impoverished households, to homeless people and single mothers, and to oppressed castes and social groups. Our economic policy continues to be trapped in an elite capture, dominated by measures that support big businesses to the exclusion of farmers and workers. Social rights are broken and betrayed.

At its core, the reason for India's continuing failures to end hunger and malnutrition of its millions is the indifference of people who have never known the agony of involuntary hunger. This is ultimately the result of our enormous cultural comfort with inequality, our gravest and most culpable civilisational flaw.

> The writer is a human rights worker and writer

# AN OPAQUE PLAN

Delhi's Central Vista redevelopment project needs transparency and accountability

SHINY VARGHESE

AT THE pre-bid meeting of September 12, of the nearly 17 firms that signed a petition to ask for an open competition, one firm did not want to add its name. That firm, HCP Design Planning and Management, has now won the bid for project consultancy to redevelop Parliament, the Central Secretariat and

More than three years ago when its director, Bimal Patel, wrote in this publication about the need for a new Parliament "to make a clean break, untether ourselves from the past and more fully embrace the future", little did anyone imagine that the same firm would win the redevelopment project.

The firm was always seen as a strong contender, long before the bids were even called, given their past design histories in Gujarat – the Central Vista in Gandhinagar and the Sabarmati Riverfront Development. While Urban Development Minister Hardeep Singh Puri would not divulge the overall cost of the project at the press conference last week, approximate calculations suggest it would be around Rs 25,000 crore, given the consultancy fee was marked at Rs 448 crore. If that's public money that will be spent, how much should people know about the project? The lack of transparency was evident when neither CPWD officials nor Puri would testify to sharing the design details of the shortlisted entries or provide the names of the jury members. The question then, is: Was there any winning design at all? Also, that the grandiose plans to revamp one of the world's most famous vistas lacked even a proper de-

The word 'compete' comes from two Latin words: 'Com' which means together and 'petere' which means to seek or strive. History tells us that competitions were sacred to the Greeks, who rewarded struggle for the pursuit of perfection. In India, we shy away from competition because mediocrity is celebrated as a virtue. Here, architecture is moving away from becoming an inclusive exercise to being an exclusive space with security-laced entry.

sign brief, should worry everyone. Regarding the state of the profession, the

fact that political patronage appears to be the only way to get projects also means we can comfortably do away with open competitions that is actually the best way to honour innovation and art. For instance, the world would be poorer without some of the best Sophoclean tragedies — like Oedipus Rex, a competition entry, or even the brave Pompidou Centre in Paris, which allowed two unknown architects (Richard Rogers and Renzo Piano) to gain international currency. The word "compete" comes from two Latin words: "Com" which means together and "petere" which means to seek or strive. History tells us that competitions were sacred to the Greeks, who rewarded struggle for the pursuit of perfection. In India, we shy away from competition because mediocrity is celebrated as a virtue. Here, architecture is moving away from becoming an inclusive exercise to being an exclusive space with security-laced entry.

Rhetoric comes free though. The buildings of the redeveloped Central Vista were given life-span extensions, which increased from 150 years to 250 within the hour-long press conference by Puri. For this, they will need to work with a material other than concrete, which only has a longevity of approximately 70 years.

When architecture is seen as a product, it is our cities that take the hit. Examples of these are the East Kidwai Nagar redevelopment project, or the upcoming exhibitioncum-convention centre at Pragati Maidan in

Delhi. Ideas of beauty, humanity and design vision blur as shock-and-awe architecture takes over the landscape. Austrian architectwriter Bernard Rudofsky's book, Architecture Without Architects, critiques the idea of pedigree architecture common in Western history. The latter, by considering only the "full pageant of 'formal' architecture", tends to deride 50 centuries of the art of building.

One can't fault leaders for vaulted ambition. That's what humans have defined as development since millennia — this time, this year is no different.

An Amsterdam-based architecture firm, XML had researched the architecture of "spaces of political congregation", and released a book called *Parliament in 2010*. Having documented and compared the plenary halls of the parliaments of 193 United Nations member states, they establish five design types — circle, classroom, horseshoe, opposing benches and semi-circle.

It was telling of how the architecture shapes politics. For instance, the semi-circle layout may indicate a "consensus-seeking" leadership, while authoritarian countries have adopted the classroom plan where the leader speaks and the others listen. Case in point: Cuba, China and North Korea. There were only 11 countries that adopted the circle, as a "representation of democratic equality". It would be interesting to see what the layout plans are for the new Parliament building in Delhi.

shiny.varghese@expressindia.com



# OCTOBER 29, 1979, FORTY YEARS AGO

Influx in Assam THE PROBLEM OF unabated influx of foreign nationals, mainly Bangladeshis, and the inadvertent inclusion of large number of them in the draft electoral rolls, once again promises to become a major election issue in Assam. It may even lead to a fresh ministerial crisis in the state. The agitation against the aliens seems to be gathering momentum. The feelings on the issue run so high that while 1,200 enumerators revolted and refused to submit the records, the North-Eastern Federation of Master Printers declined to print the electoral rolls till the names of all "foreigners" were deleted. This compelled the state election department to "publish" cyclostyled and hand-written draft rolls.

PRIME MINISTER CHARAN Singh said there was enough ground for the Lok Dal, the

ALLIANCE POSSIBLE

Congress and the communists "to work together" despite differences and called for an agreement on some minimal practical programme. He said "with all the differences, there is enough ground for the Lok Dal, the Congress party and the communists to work together not for a share in power but for some common objectives of ending mass poverty and mass unemployment, and abolishing the concentration of economic and political power." In a press statement Singh said, "There are bound to be issues among

us, there are bound to be differences, let these

differences be discussed in public and de-

New Delhi

bated again and again, without the debate degenerating into pejorative language".

# KISANS CLASH

AS THE KHARIF crops go to ruin, clashes have begun among the kisans in the drought-hit villages of Bihar over the limited irrigation resources. The hour-long shoot-out between the kisans of Tajpur and Bajitpur villages in Patna district, which ended with one death on each side last Wednesday, has brought to light the water problem in rural Bihar. There is only one government tubewell there but the kisans of Tajpur, who are rich and powerful, decreed that water would not pass into the channels of Bajitpur kisans who are mostly poor.

THE INDIAN EXPRESS, TUESDAY, OCTOBER 29, 2019

# THE IDEAS PAGE

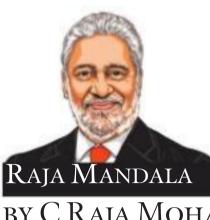
# WHAT THE OTHERS SAY

Amritsar (Jallianwala Bagh) remains to this day the most potent embodiment of the violence on which British rule partly rested for nearly two centuries.

—THE GUARDIAN

# Prince and the PM

Prince Mohammad bin Salman's reform-driven Saudi Arabia offers India room to strengthen bilateral ties



BY C RAJA MOHAN

THE FIRST order of business for Prime Minister Narendra Modi in Saudi Arabia this week is business. But the PM should also be interested in the wide-ranging social and religious reform initiated by Crown Prince Mohammed bin Salman over the last few years. Saudi Arabia's economic transformation envisaged by Prince Mohammed, also known by his initials MbS, opens up huge new opportunities for India's economic cooperation with the kingdom that has been limited for far too long to the import of oil and export of manpower.

Even more consequential over the long term is Prince Mohammed's ambitious agenda to modernise the Saudi society that has come under the domination of religious conservatism since 1979, when Islamic radicals came close to destabilising the kingdom.

Given the deep interconnections between the Gulf and the Subcontinent, the drift towards conservatism in the Arabian peninsula has had multiple negative effects on India and its neighbours, especially in altering the balance between religion, politics and the state.

The reform of the Saudi society, at the very heart of the Islamic world, will hopefully help to reverse some of these negative effects. Western liberals are dismissing the MbS agenda as cosmetic while some religious conservatives in the Middle East are denouncing it as radical. Meanwhile, the regional rivals of Saudi Arabia, especially Turkey and Iran, are mounting relentless pressures against MbS.

India, however, has a huge stake in the successful economic and social modernisation of Saudi Arabia. For a modern and moderate Arabia will reinforce similar trends in the Subcontinent. Prime Minister Modi has every reason, then, to extend strong political support to Prince Mohammed's reform agenda during his visit to Saudi Arabia.

Modi will be joining Brazil's president, Jair Bolsonaro, President Donald Trump's senior adviser and son-in-law, Jared Kushner and many other leading international figures at the annual international forum popularly known as "Davos in the Desert".

The forum, formally called the Future Investment Initiative, seeks to elevate Saudi Arabia's international economic engagement and was launched in 2017. It is part of Prince Mohammed's efforts to rapidly transform Saudi economy under the "Vision 2030" that he unveiled in 2016.

The ambition of MbS is to diversify the Saudi economy from its historical reliance on the oil business and develop manufacturing and service sectors through liberalisation at home, and deeper integration with the world. It is founded on a tripod — the kingdom's special status in the Arab and Islamic worlds, its strategic location at the trijunction of Africa, Europe and Asia, and its expansive investment capability. The objective is to generate significant and sustainable benefits for the young and rapidly growing Saudi population.

The last few years have seen some important initiatives, including the attempt to



turn Saudi Aramco, the national oil producing company, into a global conglomerate. Other reforms include easing the restrictions on foreign direct investment, promoting tourism and the entertainment industry, development of the debt market, a bankruptcy law, introduction of VAT to enhance non-oil revenue generation, cuts in water and power subsidies, cash handouts to the needy, and a massive anti-corruption campaign.

ease of doing business, offered praise for Saudi Arabia's economic reforms and named the kingdom one of the top ten "global business climate improvers" in 2019. Saudi Arabia is now ranked 62 in the global rankings, just above India.

The World Bank, in its latest report on the

An important element of Vision 2030 is the idea of strategic partnerships with select countries like the US, China, Japan, India, South Korea, Germany, France and the UK.

The MbS impact on Saudi Arabia's international policies is already evident in the growing Saudi interest to deploy massive capital into India. Aramco's decision to take a large stake in the oil business of Reliance could be the beginning of a new economic era in bilateral relations if Delhi can create the conditions for rapid growth in Saudi investments in India.

Even more interesting, from the South Asian perspective, is Prince Mohammed's commitment to strengthen the moderate trends in Islam. At the first round of the FII summit in 2017, MbS declared that, "We are returning to what we were before — a country of moderate Islam that is open to all religions, traditions and people around the globe". The crown prince further added that, "We want to live a normal life. A life in which our religion translates to tolerance, to our

India, however, has a huge stake in the successful economic and social modernisation of Saudi Arabia. For a modern and moderate Arabia will reinforce similar trends in the Subcontinent. Prime Minister Modi has every reason, then, to extend strong political support to Prince Mohammed's reform agenda during his visit to Saudi Arabia. Modi will be joining Brazil's president, Jair Bolsonaro, President Trump's senior adviser and son-in-law, Jared Kushner and many other leading

international figures at the

annual international forum

popularly known as 'Davos

traditions of kindness".

Some of the social reforms implemented in the last three years include limiting the power of the religious police in public places, granting more rights to women, lifting the 35-year-old ban on cinema halls, letting restaurants play music and permitting large music concerts.

For many outside, this may look for trivial: But for those who live in Saudi Arabia, it's a big deal. Ask, for example, the 20,000odd Pakistanis and Indians who were thrilled to be at a musical evening last week in Riyadh with Pakistani singers Atif Aslam and Rahat Fateh Ali Khan. Yoga schools are now flourishing in Saudi cities. For MbS, the agenda is about mobilising the Saudi youth with the prospect of a different and a little more liberal future.

Ending the severe austerity of social life in Saudi Arabia is only one small part of Prince Mohammed's effort to restore the equation between god and Caesar in favour of the latter. A more important part of his strategy is to strengthen the "nationalist" themes of the kingdom's narrative about itself. Nationalism is by no means seen as a counter to the deep religiosity of the people, but is seen as important to bring a much-needed balance into the Saudi worldview.

Developing stronger ties with Saudi Arabia has been an important diplomatic achievement in Modi's first term. The reform agenda of Prince Mohammed offers an opportunity for the PM to lend the relationship a durable strategic dimension.

The writer is director, Institute of South Asian Studies, National University of Singapore and contributing editor on international affairs for The Indian Express

# Abandoning Gandhi

# The idea of Truth, the reality of it, has been the biggest victim of our times

WHYINEED

**TODAY** 

AN EXPRESS IDEAS SERIES



SHASHI DESHPANDE

HAVE WE forgotten Gandhi? In this year, when we are celebrating the 150th anniversary of his birth, the answer has to be a resounding "No!" The spate of articles on him, the debates, discussions, lectures, the books that continue to be published on him all these make this abundantly clear. Even otherwise, Gandhi was always very much among us. We live in an age of documentation, and all school children know about his fight for India's freedom, his twin weapons of Ahimsa and Satyagraha. There are, besides, millions of images and pictures. Gandhi has always lent himself easily to the artist; a few lines can provide a beautiful minimalist picture, often enhanced by a tuneful, soulful Vaishnava Jana To playing in the background.

Unfortunately, in time, even this picture becomes a cliché, and stories harden into legends, they become banal and tired. If we rid of all this clutter and

go to his story as he told it: The Story of My Experiments with Truth.

It is a dramatic story, even in his own plain, unexaggerated words. From being a shy young man from Kathiawad to becoming a barrister in London, from going to Africa to earn some badly needed money for the family and becom-

ing, overnight, another man who knitted together a whole community, from being a man who came to India looking up to giants like Bal Gangadhar Tilak, Gopal Krishna Gokhale and, in the course of a visit to Bihar, because of an importunate poor farmer, discovering the weapon of civil disobedience with which to fight the British and awaken a whole country — it is a roller coaster ride like none other. As if these were not enough, he branched off into matters like a vegetarian diet, sanitation (he and his team were always there to clean the latrines), brahmacharya, the swadeshi and khadi movement.

What does one make of a man who dabbled in such disparate matters? Not so disparate to him, because for him all these elements were linked to his obsession with the Truth. His deep interest in them was part of his search for the truth.

*To describe the truth as it has appeared* and in the exact manner in which I have arrived at it has been a ceaseless activity.

Indeed, it was a ceaseless activity. The word Truth resounds throughout the book. Over and over again, he questions himself, asks if he has strayed from the Truth. To

read about the incident when he left his dying father to go to his wife because of what he bluntly calls his lust is to wonder where he got the courage to be so honest. For this was the early 20th century, when India was still caught in the grip of Victorian morality and prudery. The story of his giving in to his doctor and agreeing to drink goat's milk is equally fascinating. Why did I agree, he asks himself. Did not my vow include all milk? What sophistry made me separate goat's milk from the other kinds of milk? He was more scrupulous about keeping the vows he made to his mother (no meat, no wine, no women), observing them in the spirit not the letter. When he realised he had kept back the fact that he was married from an English woman who had befriended him, he wrote to her, confessed the truth and apologised. Endless self-questioning, endless weighing himself on some unseen moral scales, and finally admitting he was wrong if he thought he was wrong.

A devotee of truth must always hold himself open to correction and whenever he discovers himself to be wrong he must confess and atone for it.

If this is the real Gandhi, the man who believed in admitting to one's own fault and then atoning for it, we lost Gandhi long back. I doubt whether, even then, in the heyday of Gandhism, there were want to get to the real man, we need to get many who implicitly followed all of

Gandhi's teachings. There was often impatience even among his co-workers at Gandhi's mixing up of the big issues with small ones. But nothing was small to Gandhi if it was about truth. According to Gandhi, Truth, Ahimsa and God are the same.

This idea of Truth the reality of it, has been the biggest victim of our

times. Not only do we no longer care about Truth, we will not be able to recognise it even when it appears before us. Lies have become the common currency of public life, there is a mass culture of denial and refusal to take responsibility for one's words. By this one standard alone, we have failed miserably, we have abandoned Gandhi. Perhaps it requires a Gandhi to have the courage of absolute honesty. In fact, this is the time of liars, of lies which prompt a person to say, I never said that, or, I never did that, or, I was misquoted misrepresented, *quoted out of context.* 

This is a time when rapists walk with a proud swagger, men and women who cheat and loot the country brazen it out, a person in power is arrogance personified and hypocrisy is rampant. How, then, do we dare to say that Gandhi lives among us? We have had our chance. Perhaps there is a tiny chance that we will look for the Gandhi in ourselves. That, indeed, would be a greater miracle than the miracle of Mohandas Karamchand Gandhi.

The writer is a novelist, whose most recent book is Shadow Play

# Taxing new spaces

The OECD's draft report on digital taxation is a complicated compromise

in the Desert'.

Suranjali Tandon

THE PROLIFERATION OF technology has challenged the conventional notions of economic activity. This is now a serious challenge for policy, particularly for taxation. The challenges of taxing digital companies are twofold. First, the existing laws tax business profits based on its physical presence in a

Such a pre-condition, conceived in 1920s, is dated since digital businesses no longer have to be physically present to operate in and interact with an economy. Second, these platforms use hard to value intangibles. They are often registered in low tax jurisdictions which further frustrate the efforts to appropriately tax digital companies.

In the early versions of the Base Erosion and Profit Sharing (BEPS) report on the issue, the Task Force on Digital Economy at the Organisation for Economic Co-operation and Development (OECD) mentioned three measures — an equalisation levy, withholding taxes and a new nexus rule. The first two are taxes on the gross turnover whereas the new nexus rule was to modify the taxable nexus beyond the physical presence in a country. While in principle it was agreed that data and user participation are critical for a platform, no consensus emerged on their economic contribution. Disparate views derailed the talk of a uniform solution while the OECD continued to work on value-creation by various business models. Revenue authorities around the world grew anxious since large tech companies were paying very low effective tax rates.

In 2016, India was the first to apply an equalisation levy. The levy was introduced outside the scope of the Income Tax Act and is applicable to a small set of companies operating in digital advertising. Globally too, there have been efforts to move past the OECD's call for consensus and to apply unilateral measures. For example, France and Hungary have implemented digital taxes, while Belgium, Italy, UK and Spain have proposed similar taxes. These would apply to a wide range of digital services. The potential ramifications of these taxes could be overtaxation or a pass through of costs to consumers. While it remains to be seen how tenable these are under the EU's state aid or WTO rules, such measures can give market jurisdictions greater power to tax.

Then in 2018, India proposed its long term solution to the problem — test for significant economic presence. The amendment, broadly similar to EU's proposal, was based firmly on the understanding that if a digital platform reported sales from a country or had significant number of users it should be considered as having taxable presence in that jurisdiction. Though it is a stride in the direction of reform, it is far from final. First, for the law to be applicable, treaties would have to be suitably amended. Second, the more fundamental issue of what size of operations would qualify as economic pres-

ence needs to be answered. Third, even if a business qualifies as having economic presence in India, how much of its profits should be taxable in India.

At the heart of the discussion is a more fundamental political issue of the redistribution of taxing rights.

An example of this tension is the US President Donald Trump's response to the French digital tax applicable to big tech companies that are predominantly residents of the US. Although, the agenda of taxing rights was strictly off the table, revisiting the age-old question of economic allegiance of a business made it impossible to ignore the elephant in the room. The OECD finally came around in 2019 when it published a policy note wherein its work plan was split into two pillars. Pillar one would examine the allocation of taxing rights whereas all anti-avoidance measures would be considered under the second pillar.

India has been extremely instrumental in driving this conversation. This is visible in the Programme of Work published in May 2019 which incorporates India's key proposals — significant economic presence and fractional apportionment, and among others the Modified Residual Profit Split, supported by the US, and the distribution approach. In an effort to garner consensus, the OECD released its draft for a unified approach earlier this month. While the report stresses on simplicity, it is far from it. The three proposals in the earlier draft have been tied together to present a complicated compromise. Proposed therein is splitting up of global profits of a corporation into routine and nonroutine. Then a fraction of non-routine profits would be allocated to the qualifying market jurisdictions and if there is any dispute arising from such taxation it would be resolved through mandatory or binding dispute resolution.

This would require serious effort and harder consensus on issues such as what constitutes routine profit. Seemingly, the promise of an overhaul is over-sold, especially since carve-outs are anticipated for sectors such as mining and financial services. A unified approach backing the new nexus rule is only a partial win for India. The reliance placed on conventional transfer pricing could make taxation of digital companies more messy. India is in a unique position as it offers a wide user-base and thus a large market for digital companies. The idea of consensus, though critical for international relations, must also be evaluated in light of the misalignment of economic interests between developing and developed countries. A good tax system is often evaluated along the axes of certainty, simplicity and neutrality. The suggested measures in some ways undermine these principles. A possible alternative may perhaps be to switch to a simpler withholding tax architecture.

The writer is assistant professor, NIPFP

# LETTERS TO THE EDITOR

# ACT NOW

honour' (IE, October 28). The writer has cogently brought out the reasons as well as remedies to address the chronic malnutrition menace. The government needs to deal with the issue on a war footing through — convergence of fragmented schemes, behavioural change of not wasting food from schools and evidence-based action, especially targeting poor forest dwellers inhabiting remote areas.

THIS REFERS TO article 'National dis-

Tushar Chaudhary, Meerut

# PEACE CORRIDOR

THIS REFERS TO editorial, 'Kartarpur milestone' (IE, October 26). The foundation stone-laying ceremony of the Kartarpur corridor did get marred by controversies between the Congress and SAD. However, petty politics apart, the consent of India and Pakistan to build the corridor and sign the agreement may yet ensure that peace prevails between the two neighbours. The corridor holds great potential for bringing both sides to the talking table and thawing frozen relations.

Mona Singh, Amritsar

# SECULAR SPACE

New Delhi

THIS REFERS TO the article, 'Breathing space for secularists' (IE, October 28). The recent election results are a mandate for the Opposition to fulfil its fundamental responsibility to be the voice of the common man. The Congress and others have let down the voters in the last five years by ignoring bread and butter issues, and by competing with

## LETTER OF THE WEEK AWARD

To encourage quality reader intervention, The Indian **Express offers the Letter of** the Week award. The letter adjudged the best for the week is published every Saturday. Letters may be e-mailed to editpage@expressindia.com

Express, B-1/B, Sector 10, Noida-UP 201301. the BJP on nationalism and Hindutva

instead. Interestingly, by forcing the BJP

into a coalition with ambitious regional

outfits, the intelligent Indian voter has

or sent to The Indian

also constructed a natural check within the ruling dispensation. **S B Bhalerao**, Mumbai

THIS REFERS TO the article, 'Breathing space for secularists' (IE, October 28). The morality of their profession demands that "journalists" do not include their ideological inclinations in their opinions. This is exactly what this journalist has done in this article. The irony of this article is this: The BJP is pronounced guilty of being non-secular, but not a word is uttered on the morality of caste or religion-based politics, or voting by substantial sections of the

population along these lines. If the jour-

nalist feels so strongly about a political

issue, she should join politics.

**H N Bhagwat,** Chiplun

ess.com

#ExpressExplained

If there are questions of current or contemporary relevance that you would like explained, please write to explained@indianexpress.com

# **TELLING NUMBERS**

# Role of mountain streams in the carbon cycle, newly assessed

MOUNTAINS COVER 25 per cent of the Earth's surface, and the streams draining these mountains account for more than a third of the global runoff. What had not yet been evaluated, however, is the role mountain streams play in global carbon fluxes (the carbon exchanged between various carbon pools on Earth). So far, scientists had focused mainly on streams and rivers in lowaltitude tropical and boreal regions.

Now, scientists have reported the findings of the first large-scale study of the carbon dioxide emissions of mountain streams, and their role in global carbon fluxes. They described their finding as unexpected — mountain streams have a higher average carbon dioxide emission rate per square metre than streams at lower altitudes, due in part to the additional turbulence caused as water flows down slopes.

5%: The proportion that mountain streams account for in the global surface area of fluvial networks.

10%-30%: The likely share of mountain streams in carbon dioxide emissions from all fluvial networks.

The findings appear to indicate that the carbon dioxide comes from geological sources, said the Switzerland-based research institute École polytechnique fédérale de Lausanne (EPFL), whose PhD student Asa Horgby led the international study, which has been published in the journal Nature Communications.

In a statement on the research, EPFL said the result shows how important it is to include mountain streams in assessments of the global carbon cycle.

The scientists collected big environmental data from the streams draining the world's main mountain ranges. Then they used these big data to develop a model to estimate the natural carbon dioxide emissions from more than 1.8 million mountain streams worldwide, the EPL statement said.

# THIS WORD MEANS

## **NELLOPTODES GRETAE**

A species of beetle has been named after Greta Thunberg. Where is it from, what are its features?

BETWEEN 1964 and 1965, entomologist William Brock collected samples of soil from around east Africa. Inside one of these samples, taken in Kenya and stored in the British Natural History Museum until now, was a tiny species of beetle, pale yellow and gold. Measuring just 0.79 millimetres, the beetle has no eyes or wings, and a small pit between where the eyes should have been.

The species has just got a name. Natural History Museum scientific associate Michael Darby, who is quoted on the Museum website as saying he is a great fan of Greta Thunberg, has described the species and named it Nelloptodes gretae, after the teenage climate activist.

Biological names comprise two



Nelloptodes gretae, finally named. Natural History Museum

words, one for the genus; the other for the species. Traditionally, it is the species name that scientists coin to honour a prominent personality, friend, or relative. While the species name *gretae* derives from Greta, the genus Nelloptodes too is new, the Museum said.

# TIP FOR READING LIST

# HISTORY OF ATTITUDES TO MENOPAUSE

THE TERM menopause was coined in 1821 by French physician Charles-Pierre-Louis de Gardanne. Menopause was then viewed as a medical problem.

In The Slow Moon Climbs: The Science, History, and Meaning of Menopause, historian Susan Mattern traces the evolution of perceptions of menopause. "Menopause only became a subject of medical interest in Europe in the eighteenth century, and its place in modern medicine rests on that recent foundation. For

most of human history, people have seen menopause for what... it really is: a developmental transition to an important stage of life; not a problem, but a solution."

In its review of the book, the Financial Times noted Mattern's "empowering" message: "We become non-reproductive

> "Because of a life cycle and reproductive strategy that included menopause, human populations could explode across a landscape in favourable circumstances, but also limit the number of dependent children competing for resources and maximise the number of adult providers to young consumers. Menopause is part

so that we can do other things."

and parcel of an extraordinary ability to cooperate that has been critical to humans' success in the past and seems likely to be critical to our future...," Mattern writes.

# SIMPLY PUT QUESTION & ANSWER

# Naga talks: long road, issues

The deadline for wrapping up peace talks arrives this week, yet some key issues remain to be resolved. A primer on the long history of the Naga struggle, the territorial demand, and the role of NSCN(I-M)

**ABHISHEK SAHA** 

GUWAHATI, OCTOBER 28

THE DEADLINE set by the Centre for wrapping up the Naga peace talks, October 31, arrives this week. While the Centre's interlocutor and now Nagaland's Governor, R N Ravi, has stressed that the government intends to meet the deadline, some key issues remain unresolved with the National Socialist Council of Nagalim (Isak-Muivah), or NSCN(I-M).

### What are the Naga peace talks?

The talks seek to settle disputes that date back to colonial rule. The Nagas are not a single tribe, but an ethnic community that comprises several tribes who live in the state of Nagaland and its neighbourhood. One key demand of Naga groups has been a Greater Nagalim that would cover not only the state of Nagaland but parts of neighbouring states, and even of Myanmar.

The British had annexed Assam in 1826, in which they subsequently created the Naga Hills district and went on to extend its boundaries. The assertion of Naga nationalism, which began during British rule, has continued after Independence, and even after Nagaland became a state. Along the way, the unresolved issues gave rise to decades of insurgency that claimed thousands of lives, including of civilians.

#### How has the Naga assertion played out historically?

The earliest sign of Naga resistance dates back to 1918, with the formation of the Naga Club. In 1929, the Club famously told the Simon Commission "to leave us alone to determine for ourselves as in ancient times".

In 1946, A Z Phizo formed the Naga National Council (NNC), which declared Naga independence on August 14, 1947, and then, in 1951, claimed to have conducted a referendum in which an overwhelming majority supported an independent Naga state.

By the early 1950s, the NNC had taken up arms and gone underground. The NNC split in 1975, the breakaway group being the NSCN, which split further in later years, most prominently into the NSCN(I-M) and NSCN (Khaplang) in 1988.

#### And how have the peace talks played out in recent years?

Before the ongoing talks, which followed a framework agreement in 2015, there were

Isak Chish n, National

NSCN (I-M) leaders Isak Chishi Swu (now deceased) and Thuingaleng Muivah at a reception in New Delhi in January 2011. Express Archive

two other agreements between Naga groups and the Centre.

**1975:** A peace accord was signed in Shillong in which the NNC leadership agreed to give up arms. Several NNC leaders, including Isak Chishi Swu, Thuingaleng Muivah and S S Khaplang refused to accept the agreement and broke away to form the NSCN. In 1988 came another split, with Khaplang breaking away to form the NSCN(K) while Isak and Muivah headed the NSCN(I-M).

**1997:** The NSCN(I-M ) signed a ceasefire agreement with the government in 1997, preceded by rounds of talks since 1995. The key agreement was that there would be no counter-insurgency offensive against the NSCN(I-M), who in turn would not attack Indian forces. The NSCN(I-M) had then announced to "every citizen of Nagalim wherever they may be", that a ceasefire agreement was entered into between the Government of India and the outfit "to bring about a lasting political solution to the long drawn out Indo-Naga issue".

**2015**: In August that year, the Centre signed a framework agreement with the NSCN(I-M). Prime Minister Narendra Modi described it as a "historic agreement" towards settling the "oldest insurgency" in India. This set the stage for the ongoing peace talks. In 2017, six other Naga armed outfits under the banner of the Naga National Political Groups (NNPGs) joined the talks.

Today, Muivah remains the senior-most

NSCN(-K), its leader Khaplang died in 2018.

Naga rebel leader. Isak died in 2016. In the

## What was in the framework agreement?

The government has not yet spelt out the details in public. Following the agreement, the government had said in a press statement: "The Government of India recognised the unique history, culture and position of the Nagas and their sentiments and aspirations. The NSCN understood and appreciated the Indian political system and governance."

On the other hand, the NSCN(I-M) issued a statement earlier this year that said, "Nagaland State does and will not represent the national decision of the Naga people." The statement was in opposition the proposal for a Register of Indigenous Inhabitants of Nagaland (RIIN) in the state of Nagaland.

### Where does the territorial demand currently stand?

In 2018, The Indian Express reported that official sources had said that the accord being finalised "does not change the boundary of states; provides autonomous Naga territorial councils for Arunachal and Manipur; a common cultural body for Nagas across states; specific institutions for state's development, integration and rehabilitation of non-state Naga militia and the removal of the Armed Forces Special Powers Act".

The map of Greater Nagalim in the NSCN(IM) vision, on the other hand, covers

a 1,20,000 sq km sprawl across the Northeast and Myanmar — the area of Nagaland state itself is only 16,527 sq km, a fraction of this vision. Amid the anxiety this has caused among citizens in neighbouring states, state governments have assured them that their respective states' territorial integrity would not be compromised.

Before the framework agreement, the Nagaland Assembly itself had endorsed the demand for "integration of all Naga-inhabited areas" as many as five times — in December 1964, August 1970, September 1994, December 2003 and on July 27, 2015.

#### What are the other issues?

The government and the NSCN(I-M) have failed to agree on issues relating to a separate Naga flag and a constitution. In its latest statement, the NSCN(I-M) has said it will not budge from the demand for the flag and the constitution — and that it is looking for a lasting solution. Earlier this month, a statement from

Governor Ravi's office said the government is determined to "honourably conclude" the Naga peace talks and it has reached a conclusion stage. But it noted: "Unfortunately at this auspicious juncture, the NSCN(I-M) has adopted a procrastinating attitude to delay the settlement raising the contentious symbolic issues of separate Naga national flag and constitution on which they are fully aware of the Government of India's position. They have mischievously dragged in the Framework Agreement and began imputing imaginary contents to it."

Ravi, 67, is a retired IPS officer who served in the Intelligence Bureau, including in the Northeast. He was appointed the Centre's interlocutor for the Naga peace talks in August 2014, and facilitated the signing of the framework agreement a year later.

#### Where could the disagreement lead to? The statement from the Governor's office

has given rise to speculation that the government is ready to sign a final peace agreement with other groups without the NSCN(I-M), the largest group, and with which the talks had begun in the first place. Civil society groups in Nagaland are divided in their opinion. Some have said the talks should be wrapped up with whatever is offered now and keep other issues open for later negotiations; others believe all issues should be settled and the NSCN(I-M) should be on board, even if it takes longer than the deadline.

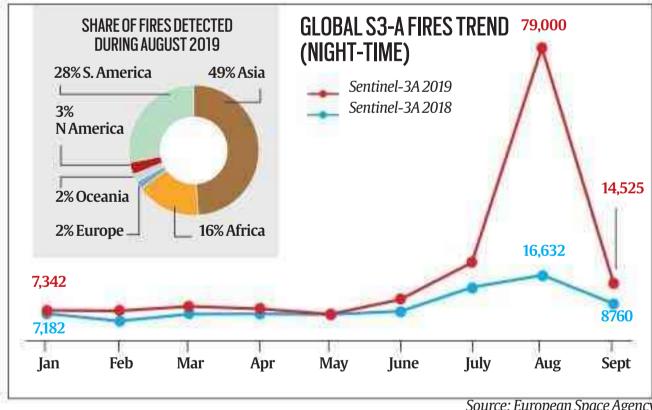
# Fires peaked in August, half were in Asia

### **EXPRESS NEWS SERVICE** NEW DELHI, OCTOBER 28

COMPARED TO August 2018, there were almost five times as many wildfires across the world in August 2019, the European Space Agency (ESA) has announced citing data from its Sentinel-3 World Fire Atlas. August and September 2019 were also the months during which fires in the Amazon rainforest were at the centre of worldwide attention. A detailed analysis of the August 2019 fires, however, shows that it was Asia that accounted for nearly half of these fires, the ESA said. "Fires in the Amazon sparked a global

outcry this summer, but fires have also been blazing in the Arctic, France, Greece, Indonesia as well as many other areas in the world," the ESA said.

**PEAK & DISTRIBUTION:** The ESA's Copernicus Sentinel-3 mission recorded 79,000 fires in August this year, compared to just over 16,000 fires detected during the same period last year. These figures were achieved



Source: European Space Agency

by using data from the Sentinel-3 World Fire Atlas Prototype, which also provided a breakdown of these fires per continent.

The data revealed that 49% of the fires were detected in Asia, around 28% were de-

tected in South America, 16% in Africa, and the remaining were recorded in North America, Europe and Oceania.

**HOW THEY ARE MAPPED:** The Sentinel-

3 World Fire Atlas uses a method that enables it to identify all active fires at night. The sensors on satellites measure thermal infrared radiation to take the temperature of Earth's land surfaces. This information is used to detect and monitor the heat emitted by the fires.

The Sentinel-3 World Fire Atlas uses the satellite data to plot the number of fires occurring monthly. It cannot pick up all fires due to satellite overpass constraints and cloud coverage. The ESA noted, however, that it is statistically representative from one month to the other and from one year to the other. "We have never seen an increase of wild-

fires of this kind since the ATSR World Fire Atlas was created in 1995," the ESA's Olivier Arino said in the statement. Quantifying and monitoring fires is im-

portant for the study of climate because, as the ESA pointed out, fires have a significant impact on global atmospheric emissions, with biomass burning contributing to the global budgets of greenhouse gases, like car-

# The rules for global post, and how Pak stopped mail to and from India

# **DIVYA GOYAL**

LUDHIANA, OCTOBER 28

IN A unilateral decision, Pakistan has stopped exchange of postal mails with India since August 27 (The Indian Express, September 28). Communications Minister Ravi Shankar Prasad has said Pakistan's decision was taken "without any prior notice" and "in direct contravention of international norms but Pakistan is Pakistan". A look at the rules governing postal exchange, and how Pakistan took the step:

#### Who regulates postal exchange between one country and another?

The United Nations' Universal Postal Union (UPU) frames rules for international mail exchange, and fixes rates for international postal services. The UPU has 192 member-countries and is headquartered in Bern, Constituted in 1874, the UPU has four units: the Congress, the Council of

Administration, the International Bureau, and the Postal Operations Council. It regulates 6.40 lakh postal outlets worldwide. India joined the UPU on July 1, 1876 and Pakistan on November 10, 1947.

#### What has mail exchange between India and Pakistan been like?

Before Pakistan's move, mailbags were being exchanged almost daily. With no regular, direct flights between the two countries, mail was being routed through the Saudi Arabia. In India, all international post is handled through the 28 Foreign Post Offices, with those in Delhi and Mumbai designated to handle mail for Pakistan.

"The mailbags of both countries were exchanged at airports after a Customs check," a senior India Post official said.

Other than the UPU, three agreements cover postal exchange between India and Pakistan — Exchange of Value Payable Article, 1948; Exchange of Postal Article, 1974; and International Speed Post Agreement, 1987.

#### Can one UPU member-country unilaterally stop postal exchange with another? Under UPU rules, when a country de-

cides to suspend exchange with a country, it must notify the operator of the other country (in India's case, India Post) and, if possible, the duration for which services are being

stopped. The UPU's International Bureau too has to be notified.

The International Bureau issued a Convention Manual in 2018, whose Articles 17-143 detail 'Steps to be Taken in Event of Temporary Suspension and Resumption of Services'.

"If services are temporarily suspended, the designated operator or designated operators concerned must be notified of the fact by telecommunications, indicating, if possible, the probable duration of the suspension of services. The same procedure shall be ap-

plied when the suspended services are resumed," the Manual reads. It adds, "The International Bureau must be notified of the suspension or resumption of services if a general announcement is considered necessary. If necessary, the International Bureau shall notify designated operators by telecom-

munications. The designated operator of origin shall have the option of refunding the postage charges, special charges and air surcharges to the sender if, owing to the suspension of services, the benefit accruing from conveyance of the item in question was obtained only in part or not at all." According to the three bilateral agree-

ments between India and Pakistan, too, a prior notice has to be served before suspending services, sources in India Post said.

So, did Pakistan skip the UPU protocol? India was not given prior notice when

Pakistan suspended postal exchange, said Tanweer Qamar Mohammad, deputy director general, International Relations and Global Business, India Post. Even two months later, India is yet to receive a direct communication. Pakistan only handed over a copy of an internal order to airline operators, which handed them to Indian representatives, Qamar said.

"On August 23, the Customs and postal departments of Pakistan issued an internal order stopping postal exchange with India and handed its copy it to airlines. They suddenly stopped picking up Pakistan-bound mailbags and asked us to take them back. Similarly India-bound mail was not given to us. Airlines handed copies of those orders to our representatives, given to them by the Pakistan side, following which the exchange stopped completely from August 27," Qamar said.

An India Post source added: "India is also unaware if Pakistan has notified the UPU about suspension of postal service with

New Delhi

India. Their internal orders do not specify any reason for the decision either. We haven't received any communication from the UPU either."

# What is the current status of mail?

India Post, too, has now stopped taking new bookings for Pakistan-bound mail. "We do not have the space or logistics to take care of packets that become a responsibility," an official said. He said the department is waiting for directions from the Ministry of External Affairs and the Ministry of Communications on the next step to be taken.

From Pakistan, Ihsan H Nadiem, chief editor of the magazine Punjab Dey Rang, said he had mailed 70 copies to the Indian side. "All our copies were returned by the postal department here and also a note in Urdu was written on it saying that postal exchange with India has been stopped. They have also refunded our money. They aren't taking any bookings now."

# The ABC of change

As new partners start working in conjunction with the state school system, a slow but distinct transformation is occurring in India's education delivery



**OUT OF THE BLUE** 

ANJULI BHARGAVA

ven as the government finalises its New Education ■ Policy (NEP), 2019, there is a massive change that is taking place across the country in the public education system that many may have not noticed.

No matter which state one looks at — barring a few who are

their peers have — the state education system is broken, losing students to private schools and barely managing to educate the fewer and fewer numbers it is left with. In almost every state, the education budget is swallowed up by staff salaries and very little is available to ramp up school infrastructure, invest in teacher training, tools or pedagogy. Many schools across states resemble a derelict, crumbling old structure and lack the energy that students infuse spaces with. There's a tired feel that envelopes you at the Indian public schools - no matter which state school you visit. Without going into the phe-

nomenal change the Delhi government has managed to achieve with its own schools (this is an Aam Aadmi Party government achievement done at its own behest), a visible

change in the capital is evident if one visits the South Delhi municipal corporation schools. There, the Delhi-headquartered Education Alliance (EA) has stepped in to help revamp the public schools — by roping in NGOs and other such organisations who work with the school - and has done a remarkable job of it. The Alliance is now working in 18 schools, where enrollments are up from 1,800 to over 5,000 and tell a story of happy students and parents. It is likely to expand to schools in Madhya Pradesh and Tamil Nadu in the coming months. The model is unique in the sense that EA acts like a bridge between the government and the private partner who will help improve the school, refraining from

In Andhra Pradesh, the Bridge International Academies — an international initiative — is now working with the state schools. The state government had several schools that were practically empty as they failed to attract students. From four schools and a few hundred students in 2015-16, Bridge is now working in six schools in Vijaywada district with close to 800 students and has around 40-45 highly trained and motivated teachers. Increasingly, it is offering to work in partnership with the government to achieve quicker and far reaching results. Once the model is proven and established, it will be offered to other state governments.

Working with close to 21 schools and impacting almost 10,000 students, the Akanksha Foundation began with its own schools to target low-income communities and is now offering its

learnings to the state school systems in Pune and other parts/districts of Maharashtra by working in partnership with government schools. In Mumbai region, Aseema and Muktangan are also working in similar spaces, all with slightly differing models.

Bharti Foundation (a philanthropic arm of the Bharti group) that runs the Satya Bharti Schools Program and Quality Support Program has also achieved some scale and is now working with 2,500 schools and centres in 18 states and UTs and reaching close to 400,000 students. A community membership project, it now covers 200,0000 community members in close to 4,000 villages.

More recently, Uttarakhand

 with state machinery that appears to be in deep slumber has embarked on an "Adopt A School" policy, cleared by the Cabinet in March this year. The state is still struggling with access and better allocation of existing resources better but has now realised that outcomes need more than just more resources and teachers. A local trust that works with 3,200 slum children

in the area has now adopted six schools, brought in donors such as the Hans Foundation and is improving what's on offer. Similar CSR-led initiatives in Udham Singh Nagar and other districts have delivered neverseen-before results for the state and it's trying to replicate the model across the state.

The upshot of all this is two primary things. Like a juggernaut, change is coming closer everyday and the elephant, if not moved, is certainly feeling the ground beneath it tremble. The movement that has begun is yet to gather momentum but it's already leading to better nourished, more educated kids and happier parents in fits and starts.

One inevitable unhappy consequence of this development is the plight of highly paid but increasingly insecure government teachers, headmasters, staff and officials. "Who moved my cheese" is what they are asking themselves and each other. The "why" is something they know but cannot tackle. The ideal outcome — moving with the cheese - is easier said than done.

and BP from KG basin in the Bay of

Bengal is also expected to start from

the second quarter of next year.

Recently auctioned small fields and

those assets under Open Acreage

Licensing rounds may also start yield-

expectations. "For production to

increase, hydrocarbon producers

should be given more sops. For exam-

ple, though a policy is in place to

explore unconventional sources like

shale in existing fields, there is no clar-

ity on pricing. The present financial

model does not permit us to explore

shale oil and gas," said a senior execu-

tructure is concerned, the government

has enhanced plans to add 11,900 km to

the existing 16,500 km of pipelines by

offering viability gap funding to some

key projects. Also, with much LNG to

come, India's regassification capacity is

set to increase from 37.5 million tonne

per annum (MTPA) to 74 MTPA in the

next 10 years at an investment of around

₹30,000 crore. In city gas distribution

too, an investment of over ₹1.5 trillion is

expected after the ninth and 10th round

of auctions to reach out to 70 per cent of

ability of a strong consumer base -

including industrial, power and city

gas distribution — are required for a

gas economy. To make this a reality,

industry sources are of the opinion that

demand from power sector should

increase. At present, around 25,000

Mw of gas-based capacity is affected

owing to the unavailability of gas, of

which 14,305 Mw is completely strand-

ed. This needs to be revived to increase

gas consumption at a quick pace. The

masterplan, therefore, remains a major

More than infrastructure, the avail-

the country's population.

As far as the development of infras-

tive from a private sector major.

But there are questions about these

ing benefits in the next four years.

#### not a big deal because he was "a born Congressman".

wide circulation on social media.

**CHINESE WHISPERS** 

Congress leader D K Shivakumar has drawn flak from some of his party leaders for

holding the Janata Dal (Secular), or JD(S), flag

on Saturday when he returned to Bengaluru

from Delhi after getting bail in a money-

laundering case. Besides Congress leaders,

there were those from the JD (S) waiting to

receive him. Shivakumar is a Vokkaliga, the

procession in a flower-bedecked vehicle, a

the Congress leader received, waved for a

while, and returned to him. A video of the

incident has since gone viral. Another video

of former chief minister and Congress leader

Siddaramaiah criticising Shivakumar for the

act, in a private conversation, is also now in

Shivakumar insisted that holding a flag was

JD(S) worker handed him a party flag, which

same caste as that of JD(S) chief HD Deve

Gowda. When he was being taken in a

Flagging concerns

Senior Congress leader and former Rajya Sabha member Karan Singh on Monday wrote to Vice-President M Venkaiah Naidu, urging him not to abandon the "beautiful, unique, round" Parliament building to move into a new, modern one, as proposed by the government. In a letter to Naidu, suggested changes in the Parliament

"In my view, it should be possible for us to shift unnecessary material and offices out of the present building and extend the halls to memory of our great Constitution-makers and parliamentarians," he wrote.

# **Preserving the House**

who is chairman of the Rajya Sabha, Singh building to accommodate more members. accommodate more members." he wrote. The former Union minister also suggested that one could consider relocating the Lok Sabha to the Central Hall, where the Constituent Assembly met for several years, and shift the Rajya Sabha (RS) to the Lok Sabha hall; the existing RS hall could be used as a central hall-type lounge for members, "This would be far better than abandoning this magnificent building which is redolent with history and the



The Oxford Union, a debating society founded in 1823 and located in Oxford, is one of the world's most prestigious private students societies, On

Wednesday, it will hold a "head-to-head" on the Kashmir issue. The Crisis In Kashmir: Should Special Status Have Been Revoked? is the topic of the debate slated for Wednesday evening. Bharatiya Janata Party (BJP) National Vice-President Baijayant Panda (pictured) will speak in favour of the motion and Communist Party of India (Marxist) General Secretary Sitaram Yechury will talk against it. The Oxford Union states while some have derided the move to scrap the provisions of Article 370 as "unconstitutional, undemocratic, and irresponsible, many in India have defended the action, arguing that it strengthens the economy and security of the state, and that special status was only ever meant to be temporary ... Was this action, then, simply a misunderstood step towards greater national unity and prosperity, or an alarming act of authoritarian over-reach?'

# Pipeline dreams of a gas-based economy

An ambitious \$118 billion masterplan has been drawn up to more than double the share of natural gas in the country's energy basket. But the hurdles are daunting too

SHINE JACOB

atural gas accounts for just 6 per cent of India's energy basket, but the government has an \$118 billion "masterplan" to increase this share to about 15 per cent in five years. To achieve this, it has earmarked some \$60 billion to create the infrastructure — pipelines, import terminals and city gas distribution (CGD) networks — by 2024 and another \$58 billion on hydrocarbon exploration and production by 2023.

India is the world's third biggest emitter of carbon dioxide in

the world and this masterplan is pitched as a step towards a cleaner fuel, meeting the United Nations COP21 commitments on climate change to cut carbon emission. Based on an industry estimate, to achieve 15 per cent, India's gas consumption should increase from around 150 million standard cubic meters per day (mmscmd) to 500 mmscmd.

The advantages of adopting this clean fuel is augmented by its viability. "This 15 per cent target is doable because gas is cheaper than its alternative by at least 40 per cent. Hence, it will reduce the country's oil import bill." said R S Sharma, former chairman and managing director of Oil and Natural Gas Corporation (ONGC).

India's crude oil import bill is expected to be around ₹8 trillion for the current financial year. Almost four years ago, the government had charted plans to cut crude oil imports by 10 per ent by 2022. Instead its

increased from 78.3 per cent in 2014-15 to 84.8 per cent in the April-August period of 2019-20.

The hurdles, however, are fairly high: Domestic production is virtually static, the country has a high import dependency on LNG and lacks infrastructure

Though the government is mulling options to create a gas hub, doing so demands higher volume and maturity in the domestic market. The Petroleum and Natural Gas Regulatory Board was to come up with a gas hub policy and the Indian Energy Exchange, the pow-

er trading platform, has already shown interest in running it.

A hub is a central pricing point for a natural gas network, but it requires pipeline networks and storage space to be in place, access to diverse gas sources including domestic, LNG and pipeline imports too. Last month, India signed a long-term \$2.5 billion LNG deal with the

United States in a move to diversify its gas sources.

**ANALYSIS BEHIND** 

THE HEADLINES

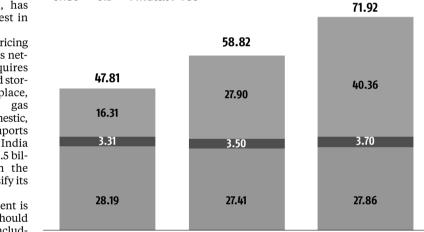
"The country's gas requirement is huge. So its natural gas plans should give priority to all forms of gas including imports via pipeline too, otherwise it will give an unnecessary weight to LNG." said Subodh Kumar Jain, director of South Asia Gas Enterprises (SAGE), which is working on a planned under-sea gas pipeline between Iran

The current strategies to increase the share of gas in the energy mix include enhancing domestic produc-



THE GAS EQUATIONS Natural gas production projection (billion cubic metres)

■ ONGC ■ OIL ■ Private/JV-PSC\*



2020-21

increasing the reach of CGD networks and LNG regassification terminals.

2019-20

\*Production sharing contracts

"All our reforms are centered on gas - these include substantial imports of LNG. ONGC's Vashishta and Vedanta's Barmer, too, are going to contribute heavily in pushing India's gas plans," minister Dharmendra

Pradhan said last week.

The petroleum ministry is bullish on its gas production outlook. According to an internal estimate, domestic natural gas production is expected to more than double to 71.92 billion cubic meter (bcm) by 2021-22 from around 35 hcm now Production

2021-22

### **LETTERS**

# A big blow, but...



The killing of Islamic State(IS) leader Abu Bakr al-Baghdadi (pictured) by US forces in Syria, that was announced by US President Donald Trump on Sunday, has dealt a big blow to one of world's deadliest terror groups. But it would be premature to conclude that the death of the IS leader had signalled its end. While the persistent military onslaught by the US and its allies and also others had annihilated IS in Syria and Iraq where its writ ran large once, it had spread its wings through franchisees, affiliates and sympathisers in several parts of the globe with its decentralised power structure.

Recent attacks in Afghanistan, Sri Lanka and Libya by the IS and its sympathisers reminds the world of their capabilities to unleash mayhem on the ground. Given the fact that IS has repeatedly reconstituted itself after several of its leaders were killed in the past and the more diffused model it has adopted over the years. one could not help but conclude that international community cannot lower its guard and fight the menace of IS until it is fully eliminated from the ground.

M Jeyaram Madurai

## The sharing game

This refers to the reports titled "Who will be CM? Sena and BJP slug it out after Maharashtra poll results" and "Sena's hard bargain in Maharashtra" (October 27). The opposition faced by

the Bharatiya Janata Party (BJP) from the Shiv Sena (SS) in Maharashtra soon after the declaration of Assembly election results over 50-50 seat sharing should not have come as a surprise to the BJP's top leadership. All through the last five years, the SS played a self-serving political game of sharing power in the national and state government and simultaneously acting as the alliance partner's persistent critic also. Yet, the BJP entered into an alliance with the SS for the state elections. The outcome was not synergic. Compared to the last Assembly election, both parties lost collectively (down from 185 to 161) and individually (BJP: from 122 to 105 and SS: from 63 to 56).

The paradox now is that the SS is eyeing a sharing of the chief minister's post when its popularity is declining continuously. When the 50:50 formula was struck in the nineties, it was the senior partner, but now its number of seats has come down. It is still 49 seats behind the BJP and is ahead of the Sharad Pawar-led National Congress Party by just five seats. Thus, its claim to the CM's post is irrational.

The BJP should stick to the promise of renaming Devendra Fadnavis as CM that it made to the voters. If the SS withdraws support, the BJP should be ready to sit in the Opposition if it comes to that. Allowing a power-sharing partner to play the role of Opposition is against



the tenets of democracy. Y G Chouksey Pune

### Sheer opportunism

The Congress' demand for Bharat Ratna for the revolutionaries Bhaghat Singh, Rajguru and Sukhdev is a clever ruse by the party to divert public attention from a similar demand by the Bharatiya Janata Party for the highest civilian honour to be conferred upon V D Savarkar. This is one of the ways through which the 134year-old party is trying to showcase its "secular" credentials. Of course, it is a different matter that while the same party was in power at the Centre, this idea never dawned on their "nationalist" leadership.

VSK Pillai Kottayam Letters can be mailed, faxed or e-mailed to: The Editor, Business Standard Nehru House, 4 Bahadur Shah Zafar Marg New Delhi 110 002

Fax: (011) 23720201 · E-mail: letters@bsmail.in All letters must have a postal address and telephone

**HAMBONE** 

#### THE AVERAGE I SUPPOSE THE POINT ONE IS FAMILY IS NOW THE FATHER THREE POINT ONE

### **ON THE JOB**

# Real wage rate falls in corporate India



MAHESH VYAS

he Indian corporate sector scaled some handsome growth rates in 2018-19. Preliminary results based on a sample of 7,739 companies for which the Annual Report and complete audited financial statements were available for the year show that sales grew by 16.4 per cent and profits grew at more than twice that rate. This is the best performance by the corporate sector in several years.

Results of listed companies (a little over five thousand) show that sales grew by 17 per cent in 2018-19. This was the highest growth rate since 2011-12. Net profit grew by 42 per cent, which is the best performance in 12 years, that is, since 2006-07.

Compensation to employees grew by a slower 11.2 per cent. In what looks like an extraordinarily good year in 2018-19, growth in compensation to labour was not correspondingly extraordinary. Labour has been recipient of a stable year-on-year growth in compensation compared to growth in profits earned by enterprise.

In the past six years, wages have grown on an average, at 10 per cent per annum within a narrow range of 9-12 per cent per annum. During the same six years, sales averaged a growth of 6 per cent per annum in a wider range from -3 per cent to +17 per cent. And, net profits grew at a rather modest average of less

than 2 per cent, but it bounced from -33 per cent to +34 per cent.

The lower growth in wages in 2018-19 compared to sales and profits is therefore. nevertheless, comforting. But, this comfort is easily flustered when we study the composition of the growth in wages in terms of growth in employment and growth in wage rates.

A much smaller set of companies provide data on employment. For the year 2018-19, while CMIE has processed 7,739 companies, data on employment was available in only 1,777 of these.

Interestingly, these 1,777 companies also show a 11 per cent growth in the wage bill. There is good reason to believe that this relatively small sample of companies reflects the situation in the larger database of the corporate sector.

Usually, a little over three thousand companies reveal information on employment in a year. These are mostly listed companies. In 2017-18 financial year, 3,213 companies provided such information. These companies employed 7.6 million people. The 1,777 companies of 2018-19 account for only 55 per cent of the sample of 2017-18 but they employ 6.5 million people and so account for 82 per cent of the employment. Thus, these 1,777 companies are the bigger employers. And, in the sizewise log-normal world of companies the sample is a good representation of the universe to derive inferences on aggre-

gate growth. What do these 1,777 companies tell us about employment and wages in the corporate world?

First, the 11 per growth in wages in 2018-19 was the result of a 5.2 per cent increase in employment and a 5.3 per cent increase in wages per employee -

the wage rate. Second, the 5.2 per cent growth in employment in 2018-19 was the highest growth in eight years.

Third, the 5.3 per cent growth in wages per employee is the lowest growth in nine years.

Thus, the faster growth in employment in 2018-19 has come at the cost of a slower growth in the wage rate. So far, in the preceding eight years, while employment growth has been anaemic, wages were growing at a relatively better clip.

In the eight years ending 2018-19, employment grew at 1.8 per cent per annum and the wage rate by 9.4 per cent. per annum, on an average. They have combined to give a 11 per cent per annum growth in total compensation to employees in these larger companies. The fall in growth of the wage rate in

2018-19 came at a particularly bad time. This was the year of a rise in the inflation rate. Consumer price inflation was 5.5 per cent in 2018-19. Thus, the 5.3 per cent rise in the wage rate translates into a 0.12 per cent fall in the real (inflation-adjusted) wage rate in 2018-19.

It is logical to expect wages to grow sufficiently to beat inflation. But, in 2018-19, the wage rate increase in India's best employers could not keep pace with inflation. This is disquieting, if not ominous.

The average wage rate for the 6.5 million employees of the 1,777 companies in 2018-19 was ₹589,120. It was ₹559,365 per employee in 2017-18. The median wage rate moved up from ₹489,352 to ₹519,836.

Over the next few weeks, the sample of companies for which employment data is available for 2018-19 will increase and stabilise at a little over three thousand. The larger sample is expected to reduce the 5 per cent plus growth in employment we see so far. This is because companies that perform relatively poorly provide results later than the good performers. But, it is unlikely that these laggards will be able to raise the wage rate growth estimate which has fallen below inflation.

The author is the MD & CEO of CMIE

# Consumption blues

Tax cut helps, but India Inc's revenue growth falters

n examination of the second-quarter results released to date indicates that the slowdown continues, though the corporate tax cut has helped boost profitability. A total of 316 companies, each with net sales of over a minimum threshold of ₹10 crore, have released results so far. This set includes many sector leaders. For this sample, sales and revenues, including other income, grew at the lowest pace in three years with sales rising 4 per cent compared to July-September 2018, while revenues grew at 6.86 per cent. This is significant for a sample that registered revenues of ₹9.66 trillion.

Expenditure has grown at a comparatively slow rate, at 3.2 per cent, year-onyear (y-o-y), probably due to the drop in global commodity and energy prices. The tax incidence has fallen 2.4 per cent y-o-y, indicating that the tax cut has helped the bottom line. Lower costs have meant better margins, as operating profit (profit before depreciation, interest, and tax) has gone up 14.6 per cent, while reported profit after tax has risen 14.7 per cent. However, after adjusting for extraordinary items, profit after tax (PAT) growth has dropped to a much less impressive 6.75 per cent. All these ratios were considerably lower than in September 2018 versus September 2017, where, for instance, reported PAT was up 22 per cent while revenues grew at 28 per cent for the same sample.

The results of this sample are also skewed by the disproportionate contributions of Reliance Industries (RIL), the three information technology (IT) majors — TCS, Infosys, and Wipro — and the private banks. Outside the financial sector, and excluding RIL, revenues have grown at less than 3 per cent, clearly indicating that consumption demand remains weak. The positive effect of the tax cut on earnings will, therefore, dissipate unless consumption picks up quickly. In terms of specific sectors, there are a few surprises and some of those are negative. The IT sector registered its lowest sales and profit growth in at least six quarters. The IT majors also issued advisories warning that the global demand for IT services was going to be slow, owing to the impending economic slowdown.

Among the automobile majors that have declared results, only Bajaj Auto has generated a significant improvement in profits, while they have all registered volume  $growth\,decline.\,However, Tata\,Motors\,has\,cut\,its\,losses\,considerably.\,The\,other\,bellwether$ of domestic consumption, the fast-moving consumer goods sector, has also shown a low top line growth rate of 5.6 per cent so far, although profits are up by 19.2 per cent.

Many pharma majors have not declared results yet but the sector as a whole seems to have done quite well, with 11 per cent growth in revenues and 23.9 per cent growth in adjusted net profits. The private banks have shown an improvement in their workings and so has State Bank of India, which is the only major public sector bank to declare results so far. However, non-banking financial companies (NBFCs) have shown signs of the ongoing stress. With as many as 36 NBFCs having declared results, profits adjusted for extraordinary items are down 39.3 per cent for the sample.

It will be difficult to extrapolate trends in the banking and energy sectors until the major PSUs declare results. However, in other sectors, the demand slowdown is now headed into its sixth successive quarter. The corporate tax rate has boosted earnings for profitable companies but hasn't triggered volume expansion. More focused policy action would be required to inject animal spirits back into

## Not a solution

A test will not ensure accountability of independent directors

orporate governance has rarely been India's strong point, and the recent past has reminded investors of this weakness with startling frequency. Especially noticeable is the failure of the checks and balances vested in the institution of the independent director. From Satyam, Kingfisher Airlines, ICICI Bank, Jet Airways, and IL&FS, independent directors have shown themselves to be ineffectual or somnolent witnesses to gross irregularities by promoters and managements. The government's proposal to tackle this widespread failure of due diligence and ethics is unlikely to change things significantly. From December, it has decreed, the Indian Institute of Corporate Affairs will administer an online qualifying exam — with a 60 per cent pass mark — for independent directors who sign on with listed and unlisted companies with paidup capital of more than ₹10 crore (the rule excludes those who have served as director for 10 years). It has also mandated that annual reports must include the test scores and the board's comments on the integrity, expertise, and experience of its independent directors. These proposals are problematic from both the practical and ethical standpoints. For one, what level of "proficiency" will this exam be testing? The basics? Or an advanced understanding of corporate law and balance sheets? Second, how can a board opinion of some of its own members be relied on as credible proof of proficiency? Third, qualifications are the least of the problem.

A proficiency exam may address the problem of promoters or smaller companies stocking boards with friends and personal employees (appointing drivers or household staff is not unknown) who can be relied on to turn a blind eye to their shenanigans. But most medium and large companies do actually hire proficient individuals with specific skills in, say, HR or audit or marketing to head various board subcommittees. It is worth noting, too, that smaller companies are not the only ones to have displayed a spectacular failure on the part of independent directors to exercise their fiduciary duties. In many large companies, for example, the directors concerned were stalwarts of the corporate and banking communities, some of international stature, or former senior civil servants. It is not obvious that a proficiency test will ensure accountability — the principal objective for the rule that independent directors must comprise a third of corporate boards — when these directors are appointed by the same promoters they are supposed to monitor. If this conflict of interest is unavoidable — the alternative, of government or external agency appointees, is undesirable — tightening the ambit of accountability and penalties could well concentrate the minds of independent directors on their responsibilities by demanding better disclosures from managements. The law stipulates that they are liable for "acts of commission and omission" that occurred with their knowledge and attributable to board processes. Since establishing such knowledge is tough, most independent directors get off lightly. For instance, those on IL&FS only lost their sinecures when the entire board was replaced. Unlike several of IL&FS' executive directors, no non-executive director has been fined or even investigated for the implosion that has brought India's financial sector to a standstill. In fact, moves such as the Supreme Court's order to arrest three group directors of Amrapali, the real estate firm, are a rarity. Aligning duties and penalties would be a far more effective way of improving the quality of governance than an exam.



# Improving the investment climate

It is time to rank the states for their business and investment environment on the basis of investor perception

nvestors, both domestic and foreign, should be pleased at the good news that India's position in the World Bank's Ease of Doing Business Global Ranking has improved further this year. India's ranking has climbed from a rather miserable 142 in 2014 to 63 in 2019 in the Ease of Doing Business 2020 Report. While the jump this year is not as big as in the previous years, India was still adjudged the 9th best performing nation.

Coming after the sharp reduction announced in

the corporation tax rate, this news should further buoy investor sentiment. The reduction in corporation tax rate to as low as 15 per cent for new investment and production units has put India in a most competitive position vis-à-vis all other economies. These measures will, of course, show results with a lag. It would be imprudent to expect them to have an immediate impact on the rate of investment and capacity formation in the country. Therefore, we can hope for a recovery in the investment cycle in the second half of FY 2020, which would then be sustained in the coming years.

Following are some aspects of the Ease of Doing Business rankings that need to be recognised:

1. As the finance minister has herself noted, estimating these rankings on merely two cities does not reflect the strongly differentiating conditions that prevail across different states in the country. It is time, therefore, to have a larger number of cities covered for estimating these rankings.

2. It is now quite evident that investment climate in individual states is the principal driver of investment activity in the country. It may not be an exaggeration to say that 80 per cent of the bottlenecks/ constraints faced by existing and potential investors

are now within the purview of individual state governments. Therefore, it is perhaps time to construct an objective Ease of Doing Business ranking across all states in the country.

3. It has to be ensured that such a ranking is undertaken by an external agency, such as the World Bank or the NITI Aayog, and is based on investors' perception of the investment climate in individual states. In my view, preparing such a ranking will have a strong positive impact on promoting private

investment and getting the states to effectively compete in attracting new investment. To rely solely on large, once-off investor summits and conventions often produce minimal results. It is time that states switched over to regularly improving their business climate and monitoring the progress on a real-time basis.

4. Improvement in aggregate business ranking disguises some of its salient features. For example, India's ranking in "enforcement of contracts" has been stuck at 163. out of 190 countries, placing it in

the bottom decile. This is clearly unacceptable as it creates significant uncertainty for investors about being able to enforce their property rights in case of a dispute. In this regard, it is worth pointing out that the Tata Trust has taken a laudable initiative of preparing a "Justice Report", which attempts for the first time ever to rank states on four pillars of justice delivery. These four pillars are: Police, Prison, Justice and Legal Aid. The report is to be launched on November 7,2019. I am hoping that this report and its subsequent annual editions will lead the states towards improving judicial governance, which is the key to improving business climate in the country.

5. On two other counts, India still does not per-

form adequately. For starting a business, the country ranks a lowly 136 with a minor improvement of one rank over the previous year. This amply reflects my earlier observation that a significant part of improving the business climate now rests with individual states. It is in the states that investors find it difficult and face several hurdles in starting businesses, whether small or large. Similarly, registering property, for some reason still remains a daunting exercise. While there is an improvement of 12 ranks from 166 to 154, we need to do more as the right to property is one of the fundamental rights in the country.

**6.** Another aspect where more improvement is required is in facilitating the payment of taxes. While there has been an improvement of six ranks on this count, we still rank a lowly 115 in 2019, having improved from 121 in 2018. Facilitating direct tax payment, both by individuals and corporations, has been on the policy agenda since 1993 when I was the economic adviser to the Department of Economic Affairs in the Ministry of Finance. It was during those years that there was an initiative to establish a large taxpayers unit, whose mandate was to facilitate tax payments and ensure no harassment for large taxpayers. It is time to effectively resuscitate this initiative so that large taxpayers, which could be restricted to 10 per cent of total taxpayers, experience a degree of comfort and hassle-free treatment in meeting their tax compliances.

7. It is, perhaps a sign of the times that our ranking in "getting credit" has slipped from a good 22 to 25 this year. This surely relates to the banking sector where credit conditions seem to have hardened over the last 12 months. This needs to be quickly reversed. It is important that a large number of our business entrepreneurs who exist in the informal sector have better access to the formal sector. The Mudra Loan scheme, under which loans worth ₹9.1 trillion have been issued to 206 million borrowers since its inception in April 2015, has surely improved credit access to those in the informal sector. But more needs to be done.

With a greater focus by state governments on improving the ease of doing business in their jurisdiction, India can surely hope, as the Prime Minister has exhorted us, to enter the top 50 ranks in the Global Ease of Doing Business Index. Though this in itself would be a huge achievement, we would need to improve even further as our economic growth and employment generation will continue to require massive investments in the private sector. From the investor's point of view, a real change would happen only when business environment in all our states qualitatively improves. It is time, therefore, to rank all the states for their business and investment environment on the basis of investor

The writer is vice-chairman, NITI Aayog. Views are



**PAHLE INDIA** 

**RAJIV KUMAR** 

The government's privatisation drive seems poised to move into higher gear. It is pushing ahead with the sell-off of Air India. It has also announced strategic sales — or the sale of a controlling equity stake — in five public sector units (PSUs) including profitable companies such as Concor and Bharat Petroleum Corporation Limited (BPCL)

The reforms brigade is cheering wildly. The government must be careful not to get carried away by the applause. Privatisation that is not carefully designed does little to help the economy — and it can be politically costly

Take the case of Air India. There was much carping over the government's failure to sell in the last attempt. It is plausible that the attempt failed precisely because the deal was correctly structured. Privatisation has a higher chance of success where assets are undervalued and the buyer stands to reap windfall gains.

The sweeteners now proposed for the Air India sale promise to do just that— confer windfall gains on the **PULSE** buver. About half of the ₹59,000 crore of debt of Air India was transferred TTRAM MOHAN last year to a special purpose vehicle. Of the remaining debt, another

₹15,000 crore is now planned to be moved out. With some of Air India's debt moved out of its books, bidders will offer a higher price than they would have done otherwise. This may make for good optics — the public may get the impression that a good price is being paid for Air India. However, from the point of view of the fisc, it is the sale value net of debt taken over by the government that counts. Analysts and opposition parties will not be taken in

by the sale value for Air India alone. Another sweetener planned is selling 100 per cent of the government's stake at one go. Not having the government as an equity owner in Air India will certainly appeal to potential buyers. However, it's not the best way to maximise revenues for the government. The point about selling in tranches — after selling a controlling stake at the outset— is that it makes for better price discovery. As performance improves with time, the government can earn more on its residual stakes. For this reason, share issue privatisation, where there is gradual disinvestment of the government's equity, has been preferred worldwide to asset sale, that is, the sale of all or a significant government stake at one shot.

The sweeteners proposed could well come to haunt the government. The govern-

ment faces two other challenges in completing the sale. It has to ensure that Air India's valuable real estate is moved off the books prior to the sale. It also has to find ways to address job security and benefits of Air India's employees. Ignoring either can invite a serious political backlash.

The primary argument for privatising Air India is that a govern ment-owned airline will make repeated demands on the exchequer. This is not such a compelling argument in an economy in which the public sector dominates banking. Several private airlines have gone

bust, inflicting huge losses on the public sector banks that financed them. In the Indian economy, there is a cost to the tax payer regardless of whether an airline is publicly-owned or privately-owned.

What is missing in the current drive towards privatisation is a rigorous conceptual framework. It does not suffice to say that the government should not be in business. We need to be clear about what we want privatisation to achieve. Privatisation is driven by one or more objectives: Increasing efficiency in the economy; raising revenues for the government and bridging the fiscal deficit; promoting the development of the capital market; increasing private initiative in the economy in general. The last two objectives have been substantially met in the decades following economic liberalisation in 1991. It is the first two objectives that are relevant to the Indian economy today.

If efficiency improvement is the primary objective, it is the more inefficient and loss-making PSUs that should be privatised. Yet, the proposal now is to privatise well-run and highly profitable companies such as Concor and BPCL. The major goal clearly is bridging the fiscal deficit at a time when tax revenues are running way below projections for the second year running. It's all about selling the family silver.

Those with long memories will recall the recommendations of the Disinvestment Commission (DC), set up in August 1996 and headed by G V Ramakrishna. The DC came out with a series of reports that provided a framework for disinvestment, strategic sales and restructuring of PSUs, Two recommendations of the DC are worth recalling. One, the disinvestment process should be de-linked from the Budget and, indeed, the proceeds of disinvestment must go into a disinvestment fund that would be used for restructuring PSUs and creating assets in rural areas. Two, there should be no strategic sale in "core" industries (such as the oil sector) or in the cases of the bigger, blue-chip PSUs.

The DC was informed by the philosophy that the public sector should be strengthened, not dismantled. The first National Democratic Alliance (NDA) government under Atal Bihari Vajpayee appeared to move away from this philosophy by pushing for strategic sales of PSUs. Following the NDA's defeat in the general elections of 2004. Shiv Sena chief Bal Thackeray remarked bitterly that he had warned the government against the political costs of overdoing privatisation. One wonders whether old-timers in the Sangh parivar will resurrect the warning after the results of the two recent Assembly elections.

The writer is a professor at IIM Ahmedabad. ttr@iima.ac.in

# Why a religious nation-state fails



**BOOK REVIEW** ANITA INDER SINGH

overing the period from 2007 to 2019, Shuja Nawaz's book tells the story of Pakistan's meaning as a religious nation-state, its civil-military politics, its misalliance with the US and its quarrels

The military has dominated Pakistani politics and society. He blames the US for shoring up its military. Instead, the US should work "with the people" — a vague phrase. If those who vote for Pakistan's political parties are the people, the US may have felt it had no choice but to support the military, given the frequency with which many of Pakistan's civilian governments have collapsed. The religious nation-state of Pakistan has failed to unite the country or create a good life for its people. (India could learn from these aspects of the Pakistani experience).

Apparently, Mr Nawaz doesn't think Pakistan can solve its problems on its own. That is why the US plays a significant but unsatisfactory role in that country. But if the US views Pakistan as a "frenemy" rather than a friend, it could be because Washington cannot define its Pakistani tie in the same way as Beijing. The reason? America's attempts to befriend both India and Pakistan annov both.

Pakistan is also an extremist trainer and exporter; it is the main reason US-led Nato forces have yet to defeat the Afghan Taliban. Isn't it unrealistic for the US and Mr Nawaz - to expect extremist-training generals to be peacemongers who will suddenly give up their Taliban clients instead of trying to steer them to the helm in Kabul? Several Pakistani-backed peace parleys have taken place but none has delivered the peace that the US wants in Afghanistan.

Mr Nawaz thinks that the US could help Pakistan to play a larger role in the Near East and Central Asia. But how? What does Pakistan have to offer countries in those regions? Muslim-majority United Arab Emirates buys around 4 per cent and Saudi Arabia just over 1 per cent of its exports. No Central Asian country ranks among its top 20 customers. Neither Saudi Arabia nor the UAE are among its top buyers. The US. its largest customer, buys 16 per cent of its exports. China is the next largest buver nearly 8 per cent. The largest source of its imports — 25 per cent — is China.

In fact, Mr Nawaz could have made more of Pakistan's long friendship with China. He thinks that the China-Pakistan Economic Corridor (CPEC) — which is actually a vital milestone on China's Belt and Road Initiative — could help Pakistan

to connect with its neighbours, who, apart from India, have also joined China's BRI. CPEC could, therefore, be the game changer that Pakistani leaders talk about. But he doesn't draw out the regional significance of that development.

FINGER ON THE

China, he argues, should bring more investment into Pakistan rather than burdensome debts. But he admits that CPEC has created jobs in the infrastructure sector and reduced the energy shortages that have held back Pakistan's economy. Of the \$46 billion that China has invested in CPEC, \$38 billion has gone to the infrastructure

and energy sectors Actually, China has done more than that. The latest news is that with Chinese help, Pakistan has become an arms exporter to India's neighbour, Myanmar, and Nigeria. The impact of China helping Pakistan to develop a commercially oriented defence industry will have implications for India's strategy and status in Myanmar and in African countries.

More investment should be made in the rebellious province of Baluchistan. Mr Nawaz points out that much of the investment in CPEC — including the development of Gwadar port in Balochistan —is tilted towards Punjab.

What China has not done, the US should do, by connecting Khyber Pakhtunwala and Balochistan, "including a tributary linked to Afghanistan"

At the political level, the US should help make Pakistan's government more open, inclusive and pluralistic. But the international experience across continents shows that domestic actors are the *primary* players in democracy-building and that democracy

assistance does not go all that far. Mr Nawaz has used a wide range of sources, including interviews with military men in Pakistan — and to a lesser extent in the US and India. Wittingly or unwittingly, his discussion revolves around the problems created by Pakistan's identity as a religious nation-state. He could have underlined that, in 1947 and for a long time after, that identity was in conflict with that of a secular democratic India. He could also have discussed whether that identity problem could affect regional security in South Asia if India comes to be defined by Hindu nationalism. Or whether two nation-state nationalisms — instead of one — could

drag their countries into war - because they seek to align religion or culture with territory. That has been the history of many nation-states across the world.

Mr Nawaz's depressingly familiar story is about incompetent politicians, military ascendancy, fractious Indo-Pakistani ties and "blaming America". More than seven decades after the partition of British India, that story reveals why Pakistan remains stuck in an ideological rut, which prevents it from making much progress. But his account of Pakistan's experiences as a religious nation-state offers lessons to India's domestic and foreign policy-makers.

The reviewer is a founding professor of the Centre for Peace and Conflict Resolution in New Delhi: www.anitaindersingh.com

THE BATTLE FOR PAKISTAN: The Bitter US Friendship And a Tough Neighbourhood Shuja Nawaz

Penguin Random House, 374 pages, ₹799

## Limits of hype

While retaining power via a post-poll tie-up, BJP will have to recognise the mandate's nature

y winning the support of the JJP to form a government in Haryana, the BJP has surmounted its failure in the recent Assembly election to win a clear majority from the people directly for a second term. All non-BJP parties in the State, and most independents, campaigned on an anti-BJP plank and it would be reasonable to assume that the BJP that won 40 of the 90 seats in the State did not get a clear mandate. As the single largest party, its claim to form a government was legitimate, and also reinforced by the support of the JJP that has 10 MLAs. All seven independents and Haryana Lokhit Party's Gopal Kanda have also offered support to the government, which could be a stable one. The BJP's numerical advantage allows it to forgo the support of Mr. Kanda, a controversial politician accused of abetting the suicide of a woman. The JJP and the BJP stridently campaigned against each other, but with their alliance, the BJP got a foothold among the Jat community that overwhelmingly voted against the party. As for the JJP, it could now claim a share of power for the community which is its core base.

The results and the nature of the coalition mark an interruption in the BJP's winning streak since the 2014 Parliament election, save its defeats in a few States to the Congress in 2017-18. The BJP's Hindutva plank combined with the rhetoric of development has paid it dividends, emboldening it to sidestep or even trample over regional allies. By falling back on a largely caste-based regional outfit for retaining power in a heartland State, Hindutva has exposed its limits, at least in the electoral field. The combination of religious sentiments and anti-Pakistan diatribe may still mobilise its core constituency, but that alone cannot guarantee victory all the time. It would be premature to conclude that people voted entirely on material issues or development, but those factors that the BJP desperately tried to shut out of the public discourse did matter. Particular identities of regional pride and caste dynamics that the Prime Minister's politics had largely rendered ineffective also appear to have made a comeback. The BJP's new alliance also blunts the party's claims about being the champion of probity. It may have rescued itself from the ignominy of taking Mr. Kanda's support, but the JJP's legacy is far from being unblemished. Deputy Chief Minister Dushyant Chautala's father and grandfather are serving sentences as convicts in a case of appointing teachers in exchange for bribes. That his father got a furlough from jail soon after the BJP-JJP agreement is too much of a coincidence. The opportunism of the JJP and the BJP, however, does not wipe out the issues that have come to the fore in the Assembly election. And therein lies a glimmer of hope for the country's democracy, as a demonstration of the limits of hype.

# Death of a terrorist

Baghdadi is dead, but the conditions that gave rise to the Islamic State still remain

he death of Abu Bakr al-Baghdadi, the founder leader of the Islamic State, is a major setback to the dreaded terrorist organisation. Baghdadi, who rose to international notoriety in July 2014 when he appeared in the pulpit of Mosul's grand al-Nuri mosque as the leader of the new 'Caliphate' announced by his group, "died like a dog", according to U.S. President Donald Trump. He was hiding in a village in Idlib, the Syrian province controlled by al-Qaeda-linked jihadists and pro-Turkey rebels, when U.S. Special Forces launched an operation on Saturday. Mr. Trump says Baghdadi blew himself up in a tunnel while he was surrounded, killing himself and three of his sons. At the height of its power in 2014, the Caliphate established by Baghdadi controlled territories as large as Great Britain straddling the Iraqi-Syria border. Spread from Deir Ezzor in eastern Syria to Mosul in northern Iraq and with Ragga its de facto capital, the Caliphate drew in radicalised young Muslims world-wide into its fold, fought the Syrian and Iraqi national armies as well as rebel groups in Syria, and unleashed violence against anyone who disagreed with its version of Islam and against minority groups in Islam and non-Muslims. Baghdadi presided over the rise of his group as a death cult, bringing back memories of medieval religious conflicts.

But the Caliphate was a short-lived phenomenon. The cities the IS once ruled were liberated. Its jihadists are on the run. Now that Baghdadi is also gone, the IS is at the weakest point of its short history. But it does not mean the group is defeated. The IS, like its peers in global jihadism such as al-Qaeda, is not a completely leader-dependent organisation. It is fundamentally an insurgency comprising ideologically linked autonomous cells and loyal to one leadership. So Baghdadi's death, while a blow to the organisation and its propaganda, does not mean that IS operations are over. Second, the geopolitical conditions that led to the IS's creation have not changed much. When Abu Musab al-Zarqawi was killed by the U.S in 2006, it was a setback to the al-Qaeda in Iraq (AQI), the organisation that he led. After his death, Sunnis in northern Iraq rose against the AQI, which, along with a surge in U.S. troops in Iraq, pushed the group to retreat from the cities and towns. But it did not finish the AQI off. When Syria began plunging into chaos in the early days of the civil war in 2011, the AQI, under Baghdadi's leadership, morphed into a bigger, more powerful terrorist machinery – the IS. What happened to the IS now is similar to what happened to the AQI then. With the IS's double loss, the focus should now be on stabilising Iraq and Syria and ending the conditions that led to the rise of the AQI and the IS. Otherwise, Baghdadi's death would not mean much for the global fight against terrorism.

# Settling the Ayodhya case once and for all

There must be an understanding that in the outcome, there is neither victor nor vanquished



The Ayodhya issue is tantalisingly poised and there are only guesses about how the case could pan out - the Supreme Court of India had allowed arguments before the court and mediation talks to proceed simultaneously. It has been an unusual step. The dichotomy of this approach could perhaps be explained by the fact that the Court had marked August 15 as the deadline for turning in the settlement. Then, in July the pace of mediation was stepped up and the court wanted a report by August 1. Since there was no settlement by then, it commenced hearing. Down the line some parties made requests for a resumption of talks. It looked as if the court was unwilling to stop the hearing but also reluctant to let go of the possibility of a compromise.

Parties to appeals, settlement The appeals pending before the court - as many as 14 - arose out of five original suits filed in Allahabad. Out of the said five suits, four were filed between January 1950 and 1962. The first two were filed by individuals in their capacity as worshippers. The second suit was allowed to be withdrawn on September 18, 1990. The third suit was filed by the Nirmohi Akhara of the Ramanandi Sect through its Mahant in 1959. The fourth was filed in 1961 by the Uttar Pradesh Sunni Central Waqf Board and eight Muslim residents of Ayodhya and the general secretary (by name) of the Jamiat Ulema Hind, U.P. branch. In this suit many Hindu parties were arrayed as defendants. Represen-

tative status was given by the court

to the plaintiffs and defendants in this suit to represent their two communities respectively. The fifth suit was filed in 1989 by Bhagwan Sri Rama Virajman (the deity is regarded by law as a perpetual minor requiring representation through human agency) and Asthan Sri Rama Janma Bhumi Ayodhya (the place of birth) through Sri Deoki Nandan Agrawal, who incidentally was a former High Court judge and resident of Allahabad and sought to be treated as the friend of the deity.

Going by media reports, it appears that some of the significant parties in the case, but not all, are parties to the settlement. It is believed the Vishwa Hindu Parishad in the form of the Ram Janambhumi Nyas and its supporter T.N. Pandey as the current friend of deity on the extreme side, and the Jamiat Ulema Hind on the other extreme side are opposed to the settlement. If that be so, it means there is a broad spectrum in between, of the Sankaracharyas backed Punaruddhar Samiti, the Nirvani and Nirmohi Akhara bodies and the Hindu Mahasabha which are pro-settlement.

And most important of all, the Uttar Pradesh Sunni Central Waqf Board, the statutory custodian of the disputed site under the Waqf Act, is reported to be a signatory. If these reports are anything to go by, the board is willing to acquiesce in the acquisition of the disputed site and give up its claim to it if other places of worship are protected and the Muslim community gets a fair number of additional mosques, in Ayodhya and elsewhere, where prayers can be held. So, what does a court do under these circumstances where a number of parties come forth with a settlement which they can subscribe to and which could cease the conflict, but which other par-



lows one or more of community of persons, with the permission of the court, to sue or be sued, or may defend such suit, on behalf of or for the benefit of all persons so interested. The court shall, in every case where permission or direction is given, at the plaintiff's expense, give notice of the institution of the suit to all persons so interested, either by personal service, or, where, by reason of the number of persons or any other cause, such service is not reasonably practicable, by public advertisement, as the court in each case may direct.

Independent of the power to represent the general body, any person on whose behalf, or for whose benefit a suit is instituted or defended may apply to the court to be made a party to such suit. The only restriction for a settlement so brought about to bind all persons is that no suit could be withdrawn, or compromise made, without the leave of court. The Sunni Waqf Board having been given representative character and which claimed ownership to the site and the mosque literally excludes any scope for any other person among the Muslim community to lay claim to the property contrary to the concessions and agreement which it is prepared to enter into. The Hindu parties that have not The Code of Civil Procedure alcome on board will have to tell the

court why they are resisting a settlement in which they are getting the land for which they have been fighting for so long and raised such large funds, when the site is being effectively given up by the Muslim parties, and where the Ram temple can now be a reality. A lack of bona fides may result in some strict action from the court. Where it is alleged by one party and denied by the other that an adjustment or satisfaction has been arrived at, as per the diktat in the Code of Civil Procedure, the court shall decide the question; but no adjournment shall be granted for the purpose of deciding the question, unless the court, for reasons to be recorded, thinks fit to grant such adjournment.

#### Width of court jurisdiction

There is another larger aspect here and that is the overarching power given only to the Supreme Court under Article 142 of the Constitution, the power to do complete justice in cases before it. This rare and almost awesome power permits the court to work through legalistic objections and climb above procedural difficulties to bring about the best possible result for the parties – and in this case, the country. In the words of the Supreme Court itself in State of Punjab v Rafiq Masih (2014), "Article 142 of the Constitution of India is supplementary in nature and cannot supplant the substantive provisions, though they are not limited by the substantive provisions in the statute.

It is a power that gives preference to equity over law. It is a justice-oriented approach as against the strict rigours of the law. The directions issued by the Court can normally be categorised into one, in the nature of moulding of relief and the other, as the declaration of law." Given the fact that "justice" itself is susceptible to a plurality of meanings, the court could mesh

the wisdom of parties' efforts in putting together an agreed formulation, aided by suave handling by the mediators and the counsel's lucubration that played out in court for 40 days of marathon hearings. It can come out with a humble offering on a platter of how the collective wisdom of all parties yielded to a denouement that douses mutual bickering among the communities and cement a lasting peace that will do India proud.

#### Need for a strong message

The majority community owes to its Muslim brethren an assurance that the ugly incidents of December 6, 1992 shall never be repeated in any other place, neither in Kashi nor in Mathura. And that in the outcome, there is neither victor nor vanquished. Restoration of dented prestige, enhancement of social standing and durability are the motivations for the nature of fi-

nal outcome. On August 15, 1947, Gandhi marked the day with a 24-hour fast, prayer and spinning yarn. When C. Rajagopalachari visited and congratulated Gandhi for restoring peace in the city of Calcutta, Gandhi said he will not be satisfied "until Hindus and Muslims felt safe in one another's company and returned to their own homes to life as before". His hope remained but a dream. On the day when the judgment of the Supreme Court is given, let the Prime Minister and the Chief Minister of Uttar Pradesh appear along with other parties to the litigation to hear the judgment of the Supreme Court as it is read in open court. This act will instil confidence that even if they had failed in the past, they shall begin yet again an era of goodwill and trust among all sections of the community.

K. Kannan is a former judge of the High Court of Punjab and Haryana, and an

# Election takeaways for the Congress

Though encouraging, the Haryana and Maharashtra results are no firm sign that the party is on the comeback trail



SMITA GUPTA

or the Indian National Con-wipe-out in Maharashtra and that just concluded in these two States have revived hope in an organisation that has been in a comatose state since the general election earlier this year.

In Maharashtra, the party, in partnership with the Nationalist Congress Party (NCP) led by the redoubtable Sharad Pawar, has limited the extent of the Bharativa Janata Party-Shiv Sena's victory, making the process of government formation difficult. And in Harvana, along with other Opposition parties, it has managed to force the BJP to seek post-poll partners to form a government.

Reality versus polarisation These results, however, cannot be read as a sign that the Congress is on the comeback trail. Even its victories in the Madhya Pradesh, Raiasthan and Chhattisgarh Assembly elections, that were held towards the end of 2018, saw the party biting the dust in these States a few months later in the Lok Sabha election. But they do demonstrate that the Narendra Modi-Amit Shah duo is not invincible, and that local issues do matter. They show that playing the politics of polarisation cannot always trump issues of rising unemployment, growing rural distress economy facing a downturn.

Therefore, for the Congress to remain politically relevant, its organisation must become battleready, so that when an opportunity arises, it can take advantage of its opponents' shortcomings. A former Congress functionary went so far as to say that these results demonstrated that the party had been "defeated organisationally, not politically". Of course, the Congress needs to do more to become a winner: it must have a convincing counter-narrative and a leader who can sell its own message of hope. But these State elections do reveal the chink in the BJP's armour.

### Party in a churn

Ever since the Congress faced its second successive rout in a Lok Sabha election, the party leadership has appeared to give up, weakening an already damaged organisation. Rahul Gandhi resigned as party president on May 25. And for three months thereafter, the party remained headless till his mother, Sonia Gandhi, became interim party president on August 10 in an old guard-driven coup, barely weeks before elections were due in Maharashtra and Harvana. No effort was made to introspect on why the Congress had fared so poorly in the Lok Sabha election nor was there any attempt to rebuild the organisation. In fact,



even for these two State elections, a high-level coordination committee was set up barely 10 days ahead of polling day.

The fact that the party won a respectable number of seats in these elections - State heavyweights took the lead while the Gandhi family took a back seat therefore, sends out a message to the party as a whole. Rahul Gandhi was absent for much of the campaigning period, confining himself to a handful of rallies. Mrs Gandhi, who has been doing a holding job, did not address any rally; neither did her daughter and party general secretary Priyanka Gandhi Vadra.

In Maharashtra, party State chief Balasaheb Thorat and Congress legislative party (CLP)leader K.C. Padavi, who were appointed only in July, have little clout. At any other time, these appointments could have been read as an attempt to build a new leadership, but not months short of State elections. Meanwhile, the Mumbai Regional Congress Committee (MRCC) remained headless between July and September even as Mr. Gandhi did little to check acolyte and former MRCC chief Sanjay Nirupam from attacking the party leadership publicly.

### The old guard still matters

In Haryana, the party had to wait till September for Mrs Gandhi – after being nudged on by party veterans Ghulam Nabi Azad and Ahmed Patel – to name former State Chief Minister Bhupinder ture Party leader, and replace Ashok Tanwar, a favourite of Mr Gandhi, with former Union Minister Kumari Selja, as State chief. A miffed Mr. Tanwar subsequently quit the party.

The changes in Haryana clearly made a difference. It helped create a social coalition of Jats, Dalits and Muslims on the ground. The dominant Jat community, unhappy with Chief Minister Manohar Lal Khattar's anti-Jat politics, turned out in Mr. Hooda's strongholds to vote for Congress candidates (just as they voted for the Dushyant Chautala-led Jannayak Janta Party's nominees in his core areas). The goodwill that Ms. Selja enjoys pulled in Dalit votes. In the process, the Congress tally went from 15 to 31 MLAs. Clearly, if this team had been created after the Lok Sabha election, the party might just have wrested the State from

Meanwhile, when it became clear that Mr. Gandhi's resignation was not going to galvanise the party, his personal team – in a bid to make him stay on – reportedly spread the word that everyone needed to take sides in an approaching showdown between the younger leadership and the old — Guard. But the results, as leaders, young and old, are now saying, have only spotlighted Mr. Gandhi's "dispensability". With Mrs Gandhi return as party president, her consensual style is back: "With Sonia Gandhi at the helm, there is a greater sense of camaraderie across different age groups. Most people than to him [Mr. Gandhi]," a young leader said, while another added, "The Old Guard still remains relevant - look at Hooda's inspired fightback."

And Mr. Hooda is not the only one. In 2017, Captain Amarinder Singh had to fight to be named the party's chief ministerial face in Puniab – he won the State back for the Congress after a 10-year gap, maintained the party's strength in the Lok Sabha election this year, as well as presided over by-poll victories more recently. In 2018, party veteran Kamal Nath, as State chief, led the party to victory in Madhya Pradesh.

The Congress needs to take a cue from Mr. Pawar - at a few months shy of 79, afflicted with health issues, hounded by the government's investigative agencies, and leading a party demoralised by enforcement raids on its members, he is still leading from the front. The striking image of the Maratha strongman, addressing an election rally in blinding rain in Satara says it all: fight back.

Smita Gupta is a Delhi-based journalist

## $LETTERS\ TO\ THE\ EDITOR\ \ \ \ Letters\ emailed\ to\ letters@thehindu.co.in\ must\ carry\ the\ full\ postal\ address\ and\ the\ full\ name\ or\ the\ name\ with\ initials.$

#### Maharashtra politics In the "Sound of Music", how do vou solve a

nuns pray in agony: "Oh, problem like Maria?" The BJP may already be thinking of the line: "Oh, how do you solve a problem like the Shiv Sena?" The conditions the Shiv Sena is laying down despite its claim that it is not greedy for power are strange ("Sena's MLAselect seek BJP's written promise", October 27). The pressure being put, in the form of posters, demanding that Aditva Thackeray be made Chief Minister is mischievous and violates the spirit of cooperation. If some in the Sena have attacked the BJP time and again, why are they still

keen to be a part of the BJP-led government? Of course, in politics nothing is sacrosanct. J.S. ACHARYA,

■ Having sought votes in alliance with the BJP, it is unbecoming of the Shiv Sena to now adopt a strident stand and set terms. If the two parties continue to indulge in brinkmanship, it tantamounts to a breach of trust reposed in them by the electorate. The Sena should now direct its attention towards addressing the grievances of various sections of society in right V. SUBRAMANIAN, Chennai

■ The Sena seems to have forgotten the nature of the electoral mandate in Maharashtra. It should gracefully honour this and allow its coalition partner to form the government without any problem. It would be too much to even ask for the CM's post by suggesting an inexperienced and first-time elected candidate, and also insisting on an equal deal. V.S. GANESHAN. Bengaluru

### **Borewells as traps**

News that children continue to get trapped in borewells across India is sad to read (Page 1, "NDRF joins operation to pull boy out of borewell", October 27). If it is difficult to ensure that disused borewells are closed, why cannot there be provision to put in thick PVC pipes across the diagonal of the borewell and one at every 10 m depth? Will this not prevent someone falling in from sinking in deeper? RAMANI S.,

■ Borewell rescue operations are clearly a great challenge especially as there is no modern equipment that is still available with rescue forces. State governments should take immediate action in identifying abandoned borewells across Tamil Nadu and issue directions to District Collectors to seal all disused

borewellls with immediate effect. There need to be awareness campaigns at regular intervals. V. DHARMALINGAM,

■ A person sinking a borewell should report to the authorities the status of the borewell after it has been dug. Once it falls into disuse, it must be closed according to norms, with proof submitted to the authorities. Failure to do so should result in stringent action such as suspension of civic amenities which include water and electricity connections. As a last resort, legal action against negligent individuals may be considered. The borewell operator should

also be made a stakeholder, collaterally, in this process. DAVID APPOLLO D.,

### **Vacate accommodation**

It is a unfortunate that even a former Prime Minister has to be told to vacate his guest accommodation which he has been occupying for several years ("Deve Gowda told to vacate guest house", October 27). That 25 former MPs are vet to vacate too despite dissolution of the previous Lok Sabha is a shame. When will lawmakers show the inclination to abide by the extant rules? C.G. KURIAKOSE, Kothamangalam, Kerala

MORE LETTERS ONLINE:

THE HINDU DELHI TUESDAY, OCTOBER 29, 2019

# The power of ordinary people

Gandhi's weekend retreat at Oxford in 1931 generated insights that are still relevant today



When Gandhi went to England in 1931 to attend the Second Round Table Conference, one of his close aides suggested that he retreat for the weekend to Oxford in order to reflect on the "big questions of principle involved in negotiations". It would also afford an opportunity to have informal, relaxed conversations with some British statesmen. The philosopher, A.D. Lindsay, Master of Balliol College, extended an invitation which Gandhi accepted. He reached on October 26 with his secretary Mahadev Desai, son Devdas, his English disciple Mira Behn, and his friend C.F. Andrews. To ensure his safety, he was escorted by a large detective, who seemed even larger in contrast to the diminutive Gandhi. Whether or not he performed his other duties, I do not know, but he sure brought a goat from a nearby hill when the master was unexpectedly asked if the college served goat's milk. The goat, tied to a tree in the college's main quad, came in very handy. Gandhi was spared from going out of the college and allowed to sit on the floor in his room to have his usual diet of milk and fruits.

#### **Addressing Indians**

The Mahatma found time to address all of Oxford's 50 Indian undergraduates, most of whom turned up in Indian clothes, including some women who sat spellbound in resplendent sarees. A few who came in Western attire made sure they wore an Indian turban. "Among students, I always feel at home because I am a student," Gandhi opened his address. "If you begin by cross-examining me, we shall know each other better. Will you please make yourself thoroughly at home with me? I am not a geological specimen."

The first question to him was on the future of women in India. "The future of the women in India is that they will be equal in every respect to men, if not superior," he said. He answered questions about separate electorates for Muslims and the 'untouchables'. He was asked about his



Gandhi leaves the steamer 'Biarritz' in Folkestone in 1931. He was on his way to London to attend the Second Round Table Conference. ■ THE HINDU ARCHIVES

adroitly sidestepped this question.

He deliberately took it to mean so-

mething quite different: How far had

he, Gandhi, followed the teachings of

Christ? How deep had he dug and

how much higher had he gone by fol-

lowing the example of Christ? Just

then the senior Lindsay himself en-

tered the room. "Well, here is your

father, could he tell how far he is a

Christian. He will not be able to tell

For Gandhi, each of us must truth-

you and neither am I," Gandhi said.

fully answer how far we have

achieved spiritual growth or self-per-

fection. In saying this, Gandhi com-

municated two central points of his

ethical and religious thinking. First,

the futility of conversion, an act

which assumes that a person belongs

exclusively to one or another reli-

gion, never to both, and that he

should belong to a religion superior

to all others. Gandhi rejected the

idea of intrinsic superiority of one re-

ligion over another and the impera-

tive of constricted, exclusive belong-

ing. Second, the importance of

multiple attachments. If, as he be-

lieved, the whole point is to dig deep-

er and go higher, then why can't a

Hindu follow the teachings of Christ?

Why would that be inconsistent with

the true teachings of Rama, Krishna,

Buddha, Nanak or Kabir? Why

should anyone by restricted to a sin-

To his Christian friends he seemed

gle source of inspiration?

views on the creative power of socialism. Without batting an eyelid, Gandhi replied that "it might be a creative power if it did not depend on force". An Englishman asked if he believed in the good faith of England. Gandhi answered that he had good faith in England to the extent that he believed in the good faith of the human race. He went on: "I have definitely come to the conclusion that the total sum of human energy must be directed for the good, otherwise the world would have been destroyed long since. As a consequence, I trust England, although I have been bitten so often, not once but many times. I expect that the English nature will be converted one day and will respond".

#### Religiosity and ethics

The Oxford Mail reported that Gandhi was struck by the beauty of the little town and on his way to the poet Edward John Thompson's house, he got off the car several times to admire its towers, spires, bridges and college quadrangles. Later, Gandhi met visitors at the the Master's lodgings (Lindsay's home) at Balliol that included Madan Mohan Malaviya, Sarojni Naidu and several British parliamentarians. Also among the visitors was Lindsay's son, a tutor in Wales, who ventured to ask with some hesitation: "People want to know, how far are you a Christian?" This clearly meant how far Gandhi had travelled from Hinduism towards Christianity.

their own tradition, that no need exists to change mere labels. To people more generally, but particularly to fellow Hindus, he seemed to say that no religion can bind him absolutely. Indeed, on some issues, his own views were too closely interwoven with Christianity to be entirely Hindu and too deeply infused with Hindu and Jain ideas to be called Christian. Although Gandhi died a Hindu and remained unflinchingly so while alive, he probably exemplified the spirit of Christ more than any other man of his times. One might say, as the philosopher Margaret Chatterjee reminds us, that he responded to the teachings of Christ because he found confirmation in them of what he received from his own multiple traditions. Gandhi, always quick-witted, even **Collective action** clever but also wise and truthful,

to suggest that men and women can find the resources of self-realisation,

to work out salvation from within

A friend of Lindsay told him that he should not think of Gandhi as a saint trying to be a politician but rather as a politician trying to be a saint. But both he and his wife were convinced that having Gandhi as their guest was like having a saint in their house. The one facet of Gandhi that utterly impressed Lindsay was his conviction that nothing could be God's will if it was not understood by ordinary, unlettered people. It is often thought that for Gandhi, social transformation can be brought about only by a change in the moral character of every individual person. While Gandhi undoubtedly stressed the need for self-transformation, it is absurd to conclude that for him collective action was relatively unimportant. One of Gandhi's great contributions to social and political thought is that an enormous creative power is released when ordinary people of good will without the trappings of power, wealth or fame – come together. Such solidarity can offer the most effective resistance to unjust exploitative social practices and political tyranny. The power to transform the world flows from the collective nonviolent energies of ordinary men and women, a lesson that the high and mighty, steeped in social orthodoxy or propelled by authoritarian instincts, ignore at their peril.

Rajeev Bhargava is Professor, Centre for the Study of Developing Societies, New Delhi

# The many gaps in NCRB data

Without methodological clarity, policymaking is a challenge



PREETI PRATISHRUTI DASH & SHREYA RASTOGI

While the 2017 reports released last week by the National Crime Records Bureau present numbers on different aspects of the criminal justice system, there are crucial gaps in the data collected. Further, the opacity surrounding the methodology for collection and compilation makes the data obscure and renders them ineffective for policymaking.

#### **Basis for classification**

Offences under crime have been categorised outside the provisions of the Indian Penal Code and other special and local laws. While the report states that "socio-economic causative factors or reasons of crimes" have not been captured, the non-legislative parameters for classifying some offences have not been adequately explained. This raises questions about the basis for classification. For instance, while reporting the offence of murder, NCRB has segregated the numbers based on the different motives for murder (honour killing and dowry, for instance). But the purpose of such classification would be achieved only if a more detailed description of the categories was provided (for motives such as "gain" or "class conflict").

In contrast to crime statistics, prison statistics do not provide any such offence-wise data on undertrials and convicts. This prevents cross-referencing and examination of the numbers in both reports. Further, while prison statistics provide information on the different kinds of sentences being served by convicts, these numbers have not been categorised on the basis of offences. Thus it is impossible to gain insights into the sentencing trends for various offences and in various States or formulate policy on sentencing.

Then there are concerns about the methods of computation and presentation of data. For instance, the crime statistics report. while recording rates of recidivism, collates State-wise information on the number of juveniles and adults who were arrested earlier but not convicted, and those who were previously convicted. However, the reliability of this data is questionable, given the understanding of recidivism as arrests of people who may not have been convicted earlier for crimes they were suspected or accused of committing, and who may not be convicted again. This is especially problematic given that socio-economically marginalised people are known to repeatedly come in conflict with the law, and are routinely arrested and

released on mere suspicion. Even for those who were arrested and convicted previously, the data do not speak of the nature of crimes involving their prior conviction, and the crimes leading to their arrest now.

Similarly, there are methodological concerns about the rate of calculating chargesheeting, which has been measured based on the total number of cases disposed of by the police, and not the total number of cases for investigation. For example, in cases of murder, the overall charge-sheeting rate is shown to be 85.5%, when the total number of cases charge-sheeted (25,995) is measured against the 30,391 cases of murder disposed of by the police in 2017. However, if measured against the total 51,279 murder cases received for investigation in 2017, this figure drops to 50.7%. The explanation for this computation is further warranted since the crime snapshot at the beginning of the report places the rate of charge-sheeting beside the total number of cases received for investigation. There are similar concerns about the presentation of data on arrests, convictions and acquittals. For instance, it is unclear if the number of persons acquitted, discharged and convicted is calculated in reference to the number of persons arrested in 2017, or those charged and arrested in previous years. The statistics in this section do not speak to the total number of cases disposed of by courts in 2017.

#### Reformation and rehabilitation

Further, in order to effectuate cogent policies which do justice to the goals of reformation and rehabilitation, it is important to critically understand existing programmes. While current prison statistics provide some information on the kind of facilities available for reformation and rehabilitation of prisoners, they do not go beyond the enrolment rate to evaluate their efficacy. In the absence of information on the quality and impact of these programmes, robust policies cannot be formulated which would ensure successful reintegration of prisoners and provide those serving life-term imprisonment (52.6% of all convicts) an opportunity to reform. These policies are especially important since 94.4% of those entering the criminal justice system were arrested for the first time.

In a political system that pays little attention to those in conflict with the law, the importance of these statistics is undeniable. However, in order to explore more precise and effective solutions to criminal justice issues, NCRB must first take steps towards ensuring the accuracy, reliability and comprehensiveness of these reports.

Preeti Pratishruti Dash and Shreya Rastogi are researchers with Project 39A, National Law University, Delhi. Views expressed are personal

# Vaping is injurious to health

Measures being taken against e-cigarette companies in the U.S. could result in a dip in sales

The absence of vaping-related illnesses in the last 10 years that have seen increased use has often been cited to silence the critics of electronic cigarettes. But that is changing today. As of October 22, the number of patients with a mystery lung injury associated with the use of e-cigarettes was 1,604 from 49 States in the U.S. There have also been 34 deaths from 24 States.

The mysterious lung injury in e-cigarette users started in April, when 53 victims with a median age of 19 years in Illinois and Wisconsin were hospitalised, many under intensive care. The victims experienced coughing, shortness of breath and other symptoms. Their health had deteriorated so much that they needed to be hospitalised. While the Food and Drug Administration (FDA) and the Centers for Disease Control and Prevention are yet to identify the cause of the lung injuries, the only commonality among all the patients is that they were e-cigarette users.

#### Flavoured products

In 2009, the FDA banned all flavours except menthol in cigarettes as it was convinced that they lured children and teenagers into the practice of smoking. According to a 2016 paper, internal documents from the tobacco industry revealed that flavours were used to target potential customers who were young. Despite overwhelming evidence of the youth largely favouring flavoured vape devices, it is unclear why the FDA did not act on these. It waited till September 11 for U.S. President Donald Trump to call for a ban on flavoured e-cigarettes before announcing its plan to remove all these devices from the market, at least temporarily.

On October 17, JUUL Labs suspended retail sale of flavoured e-cigarette devices (mango, creme, fruit, and cucumber) and cartridges pending a review by the FDA. The company's deceit was not lost as the mint and menthol flavours, which an overwhelming majority of high school students prefer, are still available.

According to the National Youth Tobacco Survey, the percentage of schoolchildren who reported using

the mint and menthol flavours increased from over 42 in 2017 to nearly 64 in 2019. The fruit flavour, which has the most takers, dropped slightly from about 70% in 2017 to 66% in 2019. The 2018 National Youth Tobacco Survey found more than 3.6 million middle- and high-school students used e-cigarettes that year, a sharp increase of more than 1.5 million from the previous year. The survey found that youth used flavoured products more often than in 2017. In 2019, more than a quarter of high school students reported using e-cigarettes in the past 30 days.

### **Time-tested machinations**

The dramatic rise in e-cigarettes use by children is not at all surprising. After all, e-cigarette makers have been following the time-tested machinations of big tobacco companies to a tee. Like in the case of cigarettes, constant exposure to e-cigarette advertisements on social media, print and TV contributed to higher rates of experimentation and use, studies found. Advertisements depicting ecigarette use as glamorous, cool, attractive, liked by celebrities and as a symbol of freedom together with celebrity endorsements hearken back to the banned ploys employed by tobacco companies decades ago. The same is true of health claims that e-cigarettes are safer than tobacco cigarettes, and their endorsement by doctors as a tool to stop smoking, even in the absence of hard data.

### **Investigating advertising efforts**

The tide is slowly turning. In May 2019 the Federal Trade Commission began investigating JUUL for its marketing efforts, including the use of social media influencers to promote its vaping devices. In mid-September, CBS, WarnerMedia and Viacom dropped all e-cigarette advertising and JUUL suspended broadcast, digital and print advertising. These measures could result in a considerable dip in sales as flavoured pods account for 80% of JUUL's sales. But only time will tell whether dampening youth use is a ploy to secure FDA authorisation in May 2020.

prasad.ravindranath@thehindu.co.in



**DATA POINT** 

#### India has been consistently climbing the table in the World Bank's Ease of Doing Business (EDB) Index. In the 2020 edition of the report, of 190 economies India is among the top 10 which saw the biggest leaps from their 2019 rankings. However, among BRICS nations India's ranking is lower than that of China and Russia. By **Varun B. Krishnan Snakes and ladders |** The chart shows India's rankings among Among peers | India, like China, saw massive the EDB sub-indicators in the 2015 and 2020 editions. Eight improvement in its ranking, in the last two editions out of 10 sub-indicators showed an improvement of the report, but China and Russia still rank better RANK, 2015 INDEX 🛑 RANK, 2020 INDEX Construction RUSSIA indicators have shown 40-Getting electricity 80 in rankings Resolving insolvency 120 Trading across borders 160 Paying taxes INDIA 200-Enforcing contracts indicators 2008 2012 2016 still need Starting a business A different scale | However, the World Economic Forum's Global Competitiveness ranking 2019 (which Getting credit has a few overlapping indicators with the EDB) found India dropping 10 spots between 2018 and 2019 These two Protecting minority investors indicators RANK IN 2019\* CHANGE IN RANK SINCE 2018 Registering property 120 dropped in \*Out of 141 countries 200 160 120 The EDB score measures an economy's performance with respect to a measure of regulatory best practice across 41 indicators in 10 categories. The methodology of the EDB has often come under scrutiny, as factors like slashing corporate tax rates and quicker issuance of building permits are incentivised. The Infrastructure Skills methodology has also undergone changes over the years Source: World Bank, World Economic Forum

The Man Frindu.

### FROM THE ARCHIVES

FIFTY YEARS AGO OCTOBER 29, 1969

### Hartal to mourn Pheruman

Hartal was observed throughout Punjab today [October 28] in memory of Mr. Darshan Singh Pheruman, who died in Amritsar yesterday on the 74th day of his fast for the inclusion of Chandigarh in Punjab. The offices of the Punjab Government also remained closed. The last rites of Mr. Pheruman were performed this evening at his home village of Pheruman. The hartal was generally peaceful except for an incident at Ludhiana in which some members of a mourning procession ransacked a post office. Some processionists also shouted anti-Prime Minister and anti-Sant Fateh Singh slogans and burnt an effigy of the Prime Minister. The call for hartal was given by the Akali leader Sant Fateh Singh and the State Jan Sangh President, Dr. Baldev Prakash. The State Government had declared the day as a closed day. The Punjab police and Border Security Force guarded the State and Central Government offices, railway stations and other vital installations. According to a Punjab Government spokesman, Army has also been alerted as "a routine precautionary measure." In the Union Territory of Chandigarh, several shops, business and commercial establishments observed hartal to-day.

### A HUNDRED YEARS AGO OCT. 29, 1919.

#### India and the Imperial Navy. (From an Editorial)

India's Entry as an equal partner into the Commonwealth of the Empire has been signalised by heavy obligations being thrown on her, without, so far, any rights of her own being recognised and allowed. She has accepted direct liabilities in regard to Imperial war expenditure, to an extent which has left her sensibly poorer, entailing increased taxation, and this has only followed most generous contributions on her part in men and material. Of the claim of India to self-government, there has been much talk and even before the first hesitating step in the 'progressive realisation of responsible Government' is definitely taken, proposals are being made to saddle this country with fresh burdens in the shape of contribution to Imperial naval expenditure. It is indeed a remarkable commentary on the sincerity of the nations which are promoting the League of Nations that while this grand conception is yet being given a shape, the war lords should be devising larger and more elaborate schemes for the military defence of the Empire.

# Join Teligram Channel →

TARGETGOVTJOBS [ Https://t.me/TargetGovtJo
--

Special: Daily Update □ Newspaper, Editorial, Today's History, Air & BBC News, RSTV, The Hindu vocabulary, Imp. NewsClips, StudylQ Video, Daily, Weekly & Monthly current affairs Magazine, Dr. Vijay Agarwal Audio Lectures, Job update [Employment News Weekly], etc...

Https://t.me/Edu Books

Special: Get all important E-Books (NCERT Books, Subject Wise Books, Hand Written notes, Coaching Classes Notes), Weekly & Monthly Current Affairs Magazine, Exam Test Series, Job update, Employment News, Other Magazine etc.... [Medium: Hindi & English]

THE-PAPER & MAGAZINE THE Https://t.me/NewspapersToday]

Special :- Daily Update Newspaper (Hindi & English Language), Magazine, Employment News, Job update, 📥 Air & BBC News, Etc....

